राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

वर्ष 72 जनवरी-दिसम्बर 2024

रामाश्रम सत्संग (रजि.), ग़ाज़ियाबाद

विषय सूची

क्रमांक	पृष्ठ
भजन	1
सन्तमत क्यों धारण करना चाहिए?	2
हमारा इष्ट क्या है? हमारा तरीका और सत्संग	11
भजन	16
समर्पण का महत्वपूर्ण पर्व है गुरु पूर्णिमा	17
नचिकेता	23
गुरु महिमा	25
अनमोल वचन	26
नाम रस जो जन पिए धड़ पर शीश न होय	28
घोषणा: संस्था की कार्यकारणी समिति 2024-2025	34
भारतीय वांङ्गमय	36
समर्थ सद्गुरू परमसंत महात्मा श्री रामचन्द्र जी महाराज के उर्दू में लिखित आध्यात्मिक लेख का हिंदी अनुवाद	44

ॐ

राम संदेश

वर्ष 72 जनवरी-दिसम्बर 2024

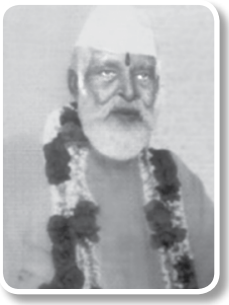

संस्थापक : ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज
संरक्षक : ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब
ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना जी
सम्पादक : श्री उमा कान्त प्रसाद (आचार्य एवं अध्यक्ष)

भजन

नाम जपन क्यों छोड़ दिया?
क्रोध न छोड़ा, झूठ न छोड़ा,
सत्य वचन क्यों छोड़ दिया?
झूठे जग में दिल ललचा कर,
असल वतन क्यों छोड़ दिया?
कौड़ी को तो खूब संभाला,
लाल रतन क्यों छोड़ दिया?
जिहि सुमिरन ते अति सुख पावे,
सो सुमिरन क्यों छोड़ दिया?

ब्रह्मलीन परमसंत महात्मा रामचन्द्रजी महाराज.....

सन्तमत क्यों धारण करना चाहिए?

मेरा यह विचार है, और अनुभव भी, कि सन्तमत के आन्तरिक अभ्यास को अब तक लोग नहीं समझे हैं। जो लोग अपने आपको सन्तमत से परिचित समझते हैं, उन्हें टटोला गया तो ज्ञात हुआ कि अभ्यास तथा अमिश्रित और निर्मल सन्तमत के सिद्धान्त उनको मालूम नहीं हैं बल्कि मिश्रित सिद्धान्त जो विभिन्न सम्प्रदायों के हैं वह सुने सुनाये उनके मस्तिष्क में भरे हैं। प्राचीन हठयोग और कुछ मध्यकालीन तान्त्रिक योग उनके मस्तिष्क को ऐसा जकड़े हुए हैं कि पीछा नहीं छोड़ता। मौखिक वेदान्त ने भी अपना प्रभाव जमा रखा है। इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात हुआ कि शंकराचार्य मत के सन्यासी जो वास्तव में सन्यासी नहीं हैं, अपने आपको ऐसा सिद्ध करके दिखलाते हैं कि वे योग से भली भाँति परिचित हैं यद्यपि वाम–मार्ग की निम्न श्रेणी की सिद्धियाँ ही उनको प्राप्त हुई हैं। वे उन्हीं के विषय में प्रशंसा के पुल बाँधते हैं। इसी प्रकार बहुत–से मुसलमान सूफी अनुभव तथा चमत्कार के पढ़े हुए पुराने जमाने के किस्से बेपढ़े और कमजोर दिलों की मण्डलियों में बैठकर सुनाते रहते हैं जो केवल शेखी ही शेखी है। फकीरी का घर दूर है। सन्त तथा सन्तमत की व्याख्या के लिये हमको सन्त गति की निचली श्रेणियों को पार करके आना चाहिये तो सम्भवत: असली शब्द 'सन्त' के अर्थ का कुछ पता चल सके। 'सन्त' शब्द की व्याख्या गोस्वामी तुलसीदास जी ने नितान्त स्पष्ट भाषा में कई स्थानों पर बतलाई है। रामायण आदि धार्मिक पुस्तकों में पाठकों ने उसे पढ़ा होगा।

प्राय: सभी धर्मों का यह विश्वास है कि संसार में जब जब ऐसा अन्धकार छा जाता है कि धर्म का प्रकाश अधर्म के अन्धकार में धीमा और फीका पड़ जाता है, राजा से लेकर रंक तक ऐसे भ्रम तथा अज्ञान में पड़ जाते हैं कि उनको सत्य तथा वास्तविकता का ज्ञान नहीं हो पाता, देश का वातावरण ऐसा विषैला हो जाता है कि सज्जनों के उपदेश, धार्मिक पुस्तकों का महात्म्य, धर्म–शास्त्रों के पालन का कोई महत्व शेष नहीं रहता; जो बातें सत्य हैं वे प्रतिकूल हो जाती हैं और बदी को नेकी तथा नेकी को बदी मान लिया जाता है; सच्चा मार्ग प्रदर्शन करने वालों की राजा

खाल खिंचवा लेते हैं; निर्धन प्रजा की हँसी उड़ाई जाती है; तब सर्वाधार परमपिता परमेश्वर की दया उमड़ती है और समय तथा काल के अनुरूप विशेष कला लिये हुए एक पवित्र महान आत्मा प्रकट होती है। उसमें ऐसी आत्मिक शक्ति होती है जो उस देश के समस्त निवासियों को प्रभावित कर सके। उसके एक हाथ में धर्म ग्रन्थ तथा दूसरे में तलवार होती है। ग्रन्थ से यहाँ यह आशय है कि वह मनुष्यों को अहिंसात्मक रूप से समझा बुझा कर सद्मार्ग पर लाये। प्राचीन तथा उस काल के प्रचलित सब धार्मिक नियम रद्द कर दिये जाते हैं अथवा उन्हें भली प्रकार संशोधित करके नये सिरे से लागू कर दिया जाता है। तलवार का आशय यह है कि यदि समझाने बुझाने तथा अहिंसात्मक ढंग से सुधार नहीं होता तो दण्ड की विधि प्रयोग में लाई जाती है।

कोई अवतार या नबी ऐसा नहीं हुआ कि जिसने युद्ध और मारकाट न की हो। यदि इस सिद्धान्त का खण्डन करना हो तो सम्भवत: प्रभु ईसा और भगवान गौतम बुद्ध को इस सूची से पृथक कर देंगे। किन्तु गौतम बुद्ध और ईसा मसीह के बाद जोर की घमासान मारकाट हुई है जो उनके अनुयायियों ने और भिक्षुओं ने की। ऐसा इतिहास बतलाता है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रहे कि अवतारों के प्रगट होने का यह भेद है कि भिन्न भिन्न अवतार या नबी आध्यात्मिक श्रृंखला के किसी विशेष स्थान से किसी विशेष कला या कलाओं को लेकर प्रगट हुए। किसी में शक्ति और कलायें कम थीं, किसी में अधिक। उदाहरण के तौर पर देखें तो परशुराम जी का अवतार केवल ब्रह्मचर्य को प्रतिपादित करने के हेतु था। उनमें स्वभावत: पाशविक वृत्तियों तथा हठ का प्रभाव अधिक था। उन्हें ब्रह्मचर्य-आश्रम का अवतार कहा जाय तो कोई अत्योक्ति न होगी। भगवान राम गृहस्थाश्रम के अवतार थे। उनमें धर्मशास्त्र के पालन का प्रभाव अधिक प्रत्यक्ष था, अर्थात् उनमें प्रेम और भावनायें कुछ दबी हुई तथा ज्ञान उभरा हुआ था। उनके कर्म तथा व्यवहार मर्यादा से सीमित थे अत: उन्हें मर्यादा-पुरुषोत्तम कहा गया है। यहाँ ज्ञान-प्रधान शक्ति का दर्शन है जिसे सूफियों में कुव्वते जमाल कहते हैं। श्रीकृष्णजी महाराज वानप्रस्थ आश्रम के अवतार थे। उनमें प्रेम तथा भावनायें कुछ उभरी हुई तथा ज्ञान उनकी तुलना में कुछ दबा हुआ था। अथवा यह कहना उचित होगा कि उनमें भावनाओं का उभार, अनुशासन तथा प्रेम सब का एक साथ अत्यन्त सम अवस्था में दर्शन होता है। सूफी भाषा में यहाँ जलाल और जमाल दोनों अपने अपने मौके पर हैं और मिले जुले हुए हैं।

गौतम बुद्ध का अवतार वैराग्य, त्याग तथा ज्ञान की मिलौनी है।

हजरत यूसुफ अलहसलाम में जमाले जाहिरी है।

हजरत मूसा अलह सलाम में जलाल अधिक है।

हजरत ईसा में दया और क्षमाशीलता अधिक है जिसे सूफी भाषा में सिफ्त–रहम और दरगुजर कहते हैं।

हजरत मोहम्मद सल्लेह अल्लाहू सल्लम में उपरोक्त सर्व–गुणों का प्रभाव एक साथ तथा भिन्न–भिन्न अवसरों पर पृथक–पृथक दर्शित होता है। जिस काल में पैगम्बर साहब प्रगट हुए उसमें सर्वगुण सम अवस्था से हट गये थे, उनमें न्यूनाधिक्य हो गया था, अरब निवासियों का चरित्र और सदाचार बिगड़ गया था। इसी के कारण सर्वगुणों में समता लाने और चरित्र में आवश्यक सुधार करने के लिये हजरत आध्यात्मिक श्रृंखला के ऐसे स्थान से भेजे गये जिससे उनके गुणों और रहनी सहनी का जनता पर प्रभाव पड़े और वे पूर्णतया सन्मार्ग पर आ जायें।

तात्पर्य यह कि जहाँ जिस वस्तु की आवश्यकता पड़ी वहाँ वैसा अवतार हुआ।

भगवान राम का अवतार असली ब्रह्माण्डी मन से, स्थान से हुआ जिसे 'काल' का स्थान भी कहते हैं। भरत जी ब्रह्माण्डी बुद्धि से, शत्रुघ्न चित्त के स्थान से और लक्ष्मण जी अहंकार के स्थान से आये।

कृष्ण भगवान शुद्ध अहंकार, शुद्ध मन, शुद्ध बुद्धि, शुद्ध चित्त तथा परा और अपरा प्रकृति युक्त शुद्ध आत्मा के स्थान से अवतरित हुए। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि वे महाकाल के पारब्रह्म स्थान से अवतरित हुए।

प्रभु ईसा और बुद्ध भगवान 'कृपा' के स्थान से आये और हजरत मोहम्मद रसूल अरब निवासी दयालुता के स्थान से आये जो सन्तों का सत–पद है।

जब जिस हेतु अवतार होता है वह कार्य पूरा हो जाता है और सब प्रकार के दुराचार, अधर्म तथा अन्य बुराइयों को दूर करने का कार्य समाप्त हो जाता है तो अवतार या नबी समय पूरा करके जिस स्थान और धाम से आये थे वापिस चले जाते हैं और अपने पीछे ऐसे नियम छोड़ जाते हैं जिनका पालन भविष्य में होता रहे। पिछले नियम या तो बिलकुल रद्द कर दिये जाते हैं और नये नियम लागू करके छोड़ दिये जाते हैं, या पिछले नियमों में जो दोष आ गये हों उनकों समय और परिस्थिति के अनुसार संशोधित करके दुबारा लागू कर देते हैं। उनके चले जाने के पश्चात समय पाकर

प्रकृति का परिवर्तन का नियम काम करने लगता है। जलवायु, सामाजिक रीतियों तथा मनुष्य के स्वभाव में शनैः-शनैः परिवर्तन होने आरम्भ हो जाते हैं जैसे किसी स्थान को कितना ही साफ कर लो किन्तु कुछ दिनों के पश्चात वहाँ धूल जमा हो जाती है और दुबारा साफ करने की आवश्यकता पड़ती है।

और जब इस प्रकार फिर खराबी पैदा हो जाती है और संशोधन, सन्तुलन तथा काट छाँट की पुनः आवश्यकता पड़ती है तो फिर लगभग सौ वर्ष बाद, या एक सहस्त्र वर्ष बाद एक ऐसा सिद्ध, वली, सन्त, महात्मा पैदा होता है जो विगत अवतारों नबियों के छोड़े हुए नियमों की व्याख्या करके जनता को शान्ति पूर्वक प्रेमपूर्वक समझाता है और इस बात का प्रयत्न करता है कि लोग भले बन जायें और सन्मार्ग पर आ जायें। किन्तु पुराने नियमों में अपनी ओर से कोई संशोधन नहीं करता। केवल समय और परिस्थिति के अनुसार उपासना तथा आन्तरिक अभ्यास की विधियों में थोड़ा-सा परिवर्तन कर देता है। धर्म शास्त्र के मूल सिद्धान्तों में, जिन पर संसार का प्रबन्ध आधारित है, अपनी ओर से कोई परिवर्तन नहीं करता और न उनका विरोध करता है। उसकी शिक्षा का माध्यम प्रेम और समझाना बुझाना होता है। अवतारों की भाँति उसको यह अधिकार नहीं होता कि यदि कोई उसकी शिक्षा को न माने तो उसे दण्ड दे।

सन्त और वली दो प्रकार के होते हैं। एक तो वह जो केवल प्रेम-मार्ग को प्रयोग में लाते हैं और भक्ति तथा ज्ञान-मार्ग से लोगों को उपदेश करते हैं। दूसरे वह जो भक्ति और ज्ञान-मार्ग के साथ-साथ धर्मशास्त्र को भी लेकर चलते हैं। पहले वाले नियमानुसार शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करते क्योंकि प्रेम में कोई नियम नहीं होता। दूसरे वाले नियमानुसार यथाक्रम शिक्षा देते हैं। पहले वाले प्रेमभाव प्रधान होते हैं तो दूसरे वाले प्रेमिका-भाव प्रधान। पहली प्रकार के सन्त केवल परमेश्वर में लीन रहते हैं।

दूसरी प्रकार के महात्मा रूप और गुण (जिसे सूफी भाषा में जात और सिफात कहते हैं) दोनों पहलुओं में पूर्ण होते हैं। इसको इस प्रकार और स्पष्ट समझ लीजिये। एम०ए० पास तो प्रायः सभी विद्यार्थी करते हैं किन्तु दूसरों को पढ़ाने तथा शिक्षा देने की विशेष योग्यता सब में उतनी नहीं होती जो होनी चाहिय। यह सम्भव है कि उनमें से कुछों को पढ़ाने लिखाने का कार्य सुपुर्द कर दिया जाय जिनमें पढ़ाने की योग्यता बिल्कुल नहीं होती। ऐसे लोग समय टालते हैं और अपना वेतन वसूल करते हैं।

हजारों पढ़े लिखों में से केवल थोड़े से ही ऐसी योग्यता रखते हैं जिन्हें पढ़ाने लिखाने की प्रवीणता प्राप्त होती है। अब यदि उन्हें प्रशासन सम्बन्धी कार्य सुपुर्द कर दिये जायें तो वे बौखला जायेंगे। इसी प्रकार यदि शासन विभाग (Executive Line) के किसी डिप्टी कलेक्टर को पढ़ाने लिखाने के लिये नियुक्त कर दिया जाय तो बगलें झाँकने लगेगा। घर से तैयारी करके आना पड़ेगा और 'सिखाये हुए पूत' वाली कहावत चरितार्थ हो जायेगी। यदि किसी सन्त और वली में दोनों योग्यतायें एक साथ वर्तमान हैं तो वह जगमगाता हुआ आलोक है और पूर्ण ही नहीं सम्पूर्ण है। ऐसे महात्मा को सूफी भाषा में कामिल मुकम्मिल बल्कि अकमल कहते हैं। ऐसे महात्मा और वली प्राय: वे लोग होते हैं जो उस अवतार या नबी के अनुगामी होते हैं जो कर्म, उपासना, ज्ञान और आत्मज्ञान को लेकर सबको मिला जुलाकर शिक्षा देते हैं। यह सन्त लोग परमेश्वर में निरन्तर रत होते हुए भी लोक हित और शिक्षा में निमग्न हो जाते हैं और पहले वाले परमात्मा में पूर्ण रूप से लय हो जाते हैं। लोकशिक्षा से उन्हें कोई सम्बन्ध नहीं होता।

वास्तव में वह वली और सन्त जो परमेश्वर में लय होकर लोक कल्याण और शिक्षा में लग जाते हैं और प्रतिनिधि अथवा प्रतिरूप होते हैं उन्हीं की शिक्षा पूर्ण है। सूफी लोग इन्हें 'कायम–मुकाम' कहते हैं। यह धर्म–शास्त्र को प्रमुख रखते हैं।

ऐसे सन्त महात्माओं को सूफियों ने दो श्रेणियों में रखा है। एक 'कसबी' और दूसरे 'वहबी'।

'कसबी' वह होते हैं जो अधिकारी, सत्संगी, साधु, हंस, परमहंस, सन्त और परमसन्त की अवस्था तक अपने अभ्यास के सहारे पहुँचते हैं। कोई तो किसी बाह्य स्थान तक चढ़ाई करके अटक जाते हैं और कोई सगुण रूप के किसी सूक्ष्म स्थान तक पहुँच कर ठहर जाते हैं। कोई–कोई इन तीनों सगुण अवस्थाओं को पार करके उस परमपिता परमेश्वर के चरणों में पहुँच जाते हैं। आशय यह है कि इनकी आत्मिक उन्नति का आधार मुख्यतया इनका अपना ही अभ्यास होता है।

'वहबी' वह लोग हैं जो तैयार थे, मामूली अभ्यास किया, ऊपर से प्रभु की कृपा हुई और एकदम या धीरे–धीरे किसी ने हाथ पकड़कर ऊपर को खींच लिया। ऐसे लोग जब अध्यात्म विद्या आरम्भ करते हैं तो उनको 'मुराद' (ईश्वर का प्यारा, मकबूल beloved) कहते हैं। शेष को 'मुरीद'।

'मुराद' वह हैं जो तैयार आये हैं और जिनको अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं है। केवल सन्त के सत्संग से उनका काम बन जाता है। इनकी उन्नति का आधार केवल प्रभु कृपा होती है।

'मुरीद' वह हैं जिनके संस्कार तो अच्छे हैं किन्तु अध्यात्म विद्या को ग्रहण और शोषण करने की शक्ति बहुत क्षीण है। यह वर्षों रगड़ते हैं, डूबते, उछलते और पथ भ्रष्ट होते है। जब सीधे रास्ते पर आ जाते हैं तो किसी सगुण स्थान पर अटक जाते हैं या उससे निकलकर सर्वाधार परमेश्वर तक पहुँचने के अधिकारी बन जाते हैं। इनके भी कई वर्ग और श्रेणियाँ हैं जो इस प्रकार हैं।

पहला वर्ग 'सत्संगी' का है। सत्संगी से आशय है कि अधिकारी हो और 'सत' का संग करे। 'सत' कहते हैं सच्चाई, वास्तविकता और हकीकत को और 'संग' नाम है प्रेम, मोहब्बत मिलाप और साथ रहने का। जो सच्चाई का जानने वाला हो, सत्यप्रिय हो और सत्यदर्शी हो वही 'सत्संगी' कहलाने का अधिकारी है। सत्संगी का दूसरा नाम 'अधिकारी' है, जिसको जिज्ञासा है, जो पात्र है, जो योग्यता रखता है और वास्तव में जो सन्त के विशेष संग में रह कर उसकी कृपा की धार का लाभ उठाता है। सत्संगी और अधिकारी में केवल इतना अन्तर हो सकता है कि अधिकार, जिज्ञासा और पात्रता के बिना सत्संग नहीं करेगा। जो सत्संग करने लग जाय उसको सत्संगी कहते हैं। यह लोग गुरु वाणी को सुनते हैं। यह सगुण उपासना है। जब गुरु-वाणी पर ध्यान देते हैं और उसके अर्थ पर आ जाते हैं यह उनकी निर्गुण उपासना है। शब्दों का श्रवण कल्पना का वाह्य रूप है और उन शब्दों का अर्थ कल्पना का आन्तरिक रूप है जो निर्गुण है। इस प्रकार यह लोग सत्संग में बैठ कर निर्गुण और सगुण दोनों उपासनायें एक साथ करते हैं। किन्तु उन्होंने अभी गुरु धारण नहीं किया है।

''अधिकारी'' - 'अधि' का अर्थ है अधिक और 'कारी' का अर्थ है करना। इसका मतलब यह है कि 'कर्म' मनुष्य की रुचि, मन की इच्छाओं और आन्तरिक भावनाओं के व्यवहारिक रूप को कहते हैं। श्रवण और मनन उसका गुण है। जब मनुष्य की रुचि ईश्वर की ओर होती है, उसके मन की इच्छायें तथा आन्तरिक भावनायें उसे ईश्वर की ओर प्रेरित करती हैं और उसी के अनुरूप वह कर्म करने लगता है तब वह 'अधिकारी' की श्रेणी में आता है।

''साधु'' – जब अच्छी तरह ध्यान देकर वास्तविकता और सच्चाई को भली भाँति समझ ले, तब साधन करना सीखे जिससे उसके डर अन्तर में सत् का भाव उत्पन्न होने लगे। साधु उसको कहते हैं जो आध्यात्म विद्या की शिक्षा प्राप्त करे तथा अभ्यास करे। जो साधना न करे उसको साधु नहीं कह सकते। जैसी कि उसको 'सत' की धुन है वैसा ही उस 'सत' को ग्रहण करने का प्रयत्न करता रहता है। जो वस्तु उसके साधन में विघ्न डालती है उसको छोड़ने में कभी देर नहीं करता। वास्तव में गुरु का महात्म्य इसी के लिये है। यह गुरु–मत होकर गुरु के बताये हुए नियमों के पालन को प्रधान रखते हुए अपनी सफलता की चिन्ता में रहता है। साधु की स्थिति 'निधिध्यासन' की है। 'नि' का अर्थ है 'अन्तर या भीतर' और 'ध्या' कहते हैं ध्यान या अपनाना। 'आसन' कहते है बैठने को। जो किसी विचार को लेकर अन्तर में ध्यावे और उसी विचार पर जम कर बैठे उसको 'निधिध्यासन' कहते हैं। यह एक प्रकार का अभ्यास है जिसके लिये तरह–तरह की युक्तियों तथा शिक्षा का क्रम रखा गया है। सन्तों में इस क्रम को भजन, सुमिरण और ध्यान कहते हैं। सूफी लोग इसी को जिक्र, फिक्र और राब्ता कहते हैं।

सत्संगी का धर्म–यम और नियम है। असत्य भाव और असत्य विचारों को छोड़ना 'यम' कहलाता है। 'यम' निष्कासन करने को कहते हैं। सत्भाव और सत्विचार अपनाने को 'नियम' कहते हैं। 'यम' मिथ्या है और 'नियम' 'सत्य' है। अपने उर अन्तर के पात्र को मिथ्या विचारों से रहित करके स्वच्छ करना 'यम' और उसमें सत्य विचार भरना 'नियम' के अन्तर्गत आता है।

साधु के धर्म – आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और धारणा, ये चार साधन हैं जिन्हें वेदान्ती 'साधन–चतुष्टय' कहते हैं।

(अ) आसन – ऐसी विशेष मुद्रा में बैठना कि चित्त की वृत्तियों के चंचल होने का डर न रहे। जिस प्रकार बैठने में यह उद्देश्य पूरा हो वही 'आसन' कहलाता है।

(ब) प्राणायाम – प्राण की वृत्ति को अपने अन्तर में इस प्रकार स्थिर कर लेना है कि वह चित्त को निश्चल रख सके। श्वास को रोकने से यहाँ आशय नहीं है। चित्त की वृत्तियाँ तब तक शान्त नहीं होंगी जब तक उसको एक विशेष केन्द्र पर ठहरा कर किसी आन्तरिक वस्तु पर टिकने का सहारा न दिया जाय। जब चित्त की वृत्तियाँ न रुकें, अथवा रुकने से भागने लगें तो उसको बारम्बार उस वस्तु

पर जमाया जाय और ध्यान की सहायता लेकर उस पर स्थिर किया जाय।

(स) प्रत्याहार – वृत्ति के बारम्बार रुकने के अभ्यास को प्रत्याहार कहते हैं। यह संस्कृत शब्द 'प्रति' अर्थात पहले और 'हरी' अर्थात ग्रहण करने से निकला है।

(द) धारणा – धारण करना, पकड़ रखना अथवा जमा देने को धारणा कहते हैं। यह 'धरि' शब्द अर्थात 'पकड़ने' से निकला है।

ये सब मिल कर निधिध्यासन कहलाते हैं। इन्हें चौसाधन भी कहते हैं।

हंस – एक गति हंस की होती है जिसका अर्थ है सत्य का ग्रहण करने वाला। सत्संगी सत् का संग करने वाला और साधु सत् का साधन करने वाला होता है। 'हंस' शब्द 'हन' अर्थात् मारने से निकला है। जिसने बुरी वासनाओं को मार गिराया है और सत् जिसमें आत्मा बन कर रहता है वह हंस है। सत् को भली प्रकार धारण करके उसमें चित्त की वृत्ति को लगाये रखना 'ध्यान' है। 'समाधि' ध्यान की गहरी अवस्था है। 'सम' अर्थात मिला जुला और 'धा' अर्थात धारण करना। तात्पर्य यह कि सत् में भली प्रकार रत होकर उसको पकड़ रखने की अवस्था को समाधि कहते हैं। इस दृष्टि से हंस की दो अवस्थायें हैं। असत्य का त्याग और सत्य का भली भाँति ग्रहण करना 'हंस' और उसका दूसरा रूप बन जाना 'परमहंस' कहलाता है। कहावत भी है कि हंस दूध दूध पी लेता है और पानी छोड़ देता है। दूध सत् है और पानी असत्।

जब तक सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने से सम्बन्ध है तब तक हंस की स्थिति को 'संकल्प' कहते हैं। 'सं' का अर्थ है 'साथ' और 'कल्प' का अर्थ है पहिचान करना। यह दूध और पानी की मिली-जुली अवस्था में से पानी को छोड़ देना और दूध को ग्रहण करना है। जब यह स्थिति और अधिक गहरी हो जाती है तो फिर पहचान करने की आवश्यकता शेष नहीं रहती। यह हंसी की निर्विकल्प अवस्था है।

सूफियों के अनुसार इन सब अवस्थाओं के अभ्यासी कस्बी और वहबी दोनों प्रकार के होते हैं। कस्बी और वहबी की व्याख्या ऊपर आ चुकी है।

अब आपने सन्तों और उनके मतों की थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त कर ली। वास्तव में जो साधु और सन्त गुणों के झमेले से आगे जाने का प्रयत्न करे और कराये वही सन्त है और जिन उद्देश्यों को लेकर ऐसा किया जाय वही सन्तमत है। ऐसा

व्यक्ति सब मतों की वास्तविकता को जानकर दया की दृष्टि से सब को अपनाता है और किसी से विरोध इस कारण नहीं करता कि सब मत उसके अन्दर हैं और वह सब मतों से ऊँचा है। जो जिज्ञासु उसके सम्पर्क में आते हैं बिना किसी भेदभाव के निस्वार्थ होकर उनके आधयात्मिक दृष्टिकोण को ऊँचा करता और कराना चाहता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या सन्तमत को अपनाने का कारण केवल आन्तरिक अभ्यास है या उसके वाह्य सिद्धान्तों का पालन भी। आन्तरिक अभ्यास की शिक्षा और विवेचना तो अधिकतर एक हृदय से दूसरे हृदय को पहुंचती है जिसे सूफी लोग 'सीना–ब–सीना' कहते हैं। इसका सम्बन्धा अभ्यास से है जिसको लगभग सभी सत्संगी जानते हैं। वाह्य सिद्धान्त भी उसी के अनुरूप हैं। भीतर और बाहर एक ही सिद्धान्त काम करता है। क्या आप अन्तर में सत् की खोज करेंगे और बाहर असत् की? क्या आप दुविधाभाव से काम लेंगे जो पाखण्ड और महापाप है? भीतर और, बाहर और। मन में राम बगल में ईंटें। ऊपर जिन अवस्थाओं की व्याख्या की गई है उनमें विस्तारपूर्वक केवल सत् और असत् के भाव की वास्तविकता दिखलाई गई है। यदि गुरुमत होकर उनका अभ्यास किया जाय तो सफलता सम्भव है, अन्यथा नहीं। मनमत होना सन्तमत के विपरीत है। गुरुमत होना उसको कहते हैं कि जो गुरु कहे उसको मन, वचन और कर्म से पालन करे। किन्तु देखने में आता है कि मनमत लोगों का इतना वेग है कि वे यह चाहते हैं और इस बात का प्रयत्न करते रहते हैं कि जो कुछ वे चाहें उसके अनुसार गुरु आज्ञा दे और उनके कर्मों तथा व्यवहारों पर कोई भी आक्षेप न करे और सिर औंधाये जहाँ तक हो सके उनके असन्तुलन को सहन करता रहे। इस दृष्टि से तो अब उलटधार मामला हो गया है कि गुरु चेला है और चेला गुरु।

(सन्तमत प्रवेशिका से उद्धृत)

इंसान मायूस इसलिए होता है क्योंकि वह परमात्मा को राज़ी करने के बजाये लोगों को राज़ी करने में लगा रहता है। वह भूल जाता है कि रब राज़ी तो सब राज़ी।

ब्रह्मलीन गुरुदेव परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

हमारा इष्ट क्या है?
हमारा तरीका और सत्संग

हमारा इष्ट क्या है? जहाँ आनन्द ही आनन्द हो, ज्ञान ही ज्ञान हो और आजादी हो। जो इन तीनों का स्रोत है वही हमारा इष्ट है। दुनियां में असली सुख नहीं है। अगर सुख है भी, तो वह नाशवान है वरना दुःख ही दुःख है। ज्ञान अगर कहीं है तो स्रोत में है वरना अज्ञान ही अज्ञान है, अन्धकार ही अन्धकार है। असलियत का पता ही नहीं है। जिसे देखो बुद्धि के फेर में पड़ा है। असली आनन्द वह है जिसे प्राप्त करने के बाद किसी दूसरे आनन्द की ख्वाहिश न हो। आनन्द दो तरह का होता है (1) मन का आनन्द जो कभी स्थायी नहीं रहता, हमेशा बदलता रहता है। यह क्या दोस्ती है कि आज दोस्ती हुई, कल जुदाई हो गई। यह क्या सुख है कि आज लखपति हैं और कुछ दिनों बाद भिखारी बन गये। (2) दूसरा आनन्द आत्मा का आनन्द है, जो सदा स्थायी और सदा एक-रस रहता है। इसमें कोई तब्दीली नहीं होती। इस संसार रुपी जंजाल से, जिस में दुःख ही दुःख है, क्लेश ही क्लेश है, जो अज्ञानमय है, जहां अन्धकार है और जहां आवागमन का चक्र बराबर चलता रहता है, वहाँ से अपने आपको निकाल कर आत्मा के आनन्द में जोड़ देना है जो हमेशा रहने वाला है, जहाँ ज्ञान ही ज्ञान है, जहां आजादी ही आजादी है और जहाँ पहुँच कर आदमी आवागमन के चक्र से छूट जाता है।
इसके दो रास्ते हैं। एक को प्रवृत्ति मार्ग कहते हैं और दूसरे को निवृत्ति मार्ग। एक है अनुराग, दूसरा है वैराग। एक Positive (स-कार) है दूसरा Negative (न-कार) है। निवृत्ति मार्ग में प्रत्येक वस्तु को Negative (न-कार) करते चलते हैं अर्थात ''कुछ नहीं है'' 'जगत मिथ्या है'।

जिस को देखता है उसी में असारता पाता है, जिस चीज को पकड़ता है वही टूटी हुई निकलती है। हर चीज में देखता है कि वह छूटने को है तब कहता है कि जगत मिथ्या है। जहाँ हर क्षण बींदहम (परिवर्तन हो रहा है वहाँ कौन सी चीज ever lasting (सदा रहने वाली) है, जब यह सोच विचार विवेक बुद्धि

द्वारा चित्त में बैठ जाता है, तब वैराग पक्का होता है। मुसलमानों में भी पहले ''ला इलाह'' (कुछ नहीं है सिवाय अल्लाह के), फिर आता है 'अल्लाह'। पहले दुनियाँ को नफ़ी (नकार) करके चलना पड़ता है दूसरा अनुराग है जिसे सूफियों में 'असबात' कहते हैं और दूसरे शब्दों में इसे प्रवृत्ति मार्ग भी कहते हैं। यह positive (स–कार) है। जब तक मन की दुनियाँ का अन्त नहीं होगा, जब तक आप ईश्वर से मिलने के लिए तड़पेंगे नहीं, तब तक इस रास्ते पर नहीं आयेंगे। जब lover और beloved (प्रेमी और प्रीतम) का प्यार, पतिव्रता पत्नी और पति का प्यार, या और कोई प्यार, सब इकट्ठे नहीं हो जाते तब तक सच्चा वियोग नहीं होता और जब ऐसा वियोग हो जाता है तब पुकारने से ईश्वर मिलता है। सब चीज को छोड़कर एक ईश्वर से प्रेम करो, मन जहाँ–जहां फँसा हुआ है वहाँ से खेंच कर, उसकी बिखरी हुई शक्तियों को बटोर कर एक ईश्वर के चरणों में लगा दो। उसके ख्याल में और उसके प्रेम में महव (तल्लीन) हो जाओ कि सिवा उसके और किसी का ध्यान न रहे। यह दुनियां तो जैसी है वैसी ही रहेगी और इसका कोई काम बन्द नहीं होगा। हमें इससे क्या, हमें तो अपने प्रीतम से काम है।

मालिक तेरी रजा रहे, और तू ही तू रहे।
बाकी न मै रहूँ, न मेरी आरजू रहे।

यही प्रवृत्ति मार्ग है, यही मुसलमानों का असबात है, यही positive (स–कार) रास्ता है और यही सन्तों का प्रेम–मार्ग है। रास्ता आसान नहीं है। इसमें दृढ़ विश्वास और अभ्यास की बड़ी जरूरत है। रुकावटें आती हैं और ऐसा लगता है कि तरक्की नहीं हो रही लेकिन निराश नहीं होना चाहिए ।

एक साहब ने किताब में पढ़ा कि राम नाम का जाप करने से ईश्वर के दर्शन होते हैं। मन्दिर गए, आखें बन्द करके बैठे और जाप करने लगे। दस पन्द्रह मिनट बाद आखें खोल दी कि ईश्वर के दर्शन नहीं होते और सोच लिया कि रास्ता गलत है। यही हाल अभ्यासियों का है। अभ्यास करते नहीं हैं और चाहते हैं कि ईश्वर के दर्शन हो जाएँ, आत्मा के पर्दे अभी हटे नहीं हैं, मन की ख्वाहिशें (इच्छाएं) गई नहीं हैं और रास्ते को गलत समझ बैठे।

हम खुदा रुवाही व हम दुनियामे दू',
ई खयालास्तो मुहालस्तो जनूँ।

भावार्थ- ईश्वर को भी पाना चाहता है और दुनियाँ को भी चाहता है, यह पागलपन नहीं तो और क्या है?

किसी चीज के attachment (लगाव) का पता उसकी मौजूदगी में नहीं लगता। जब वह चीज नहीं होती या उससे separation (वियोग) हो जाता है, तब पता लगता है कि attachment यानी लगाव कितना है और बैराग कितना है। दुनिया अगर बुरी लगती है, तो ईश्वर मिलना चाहिए, आनन्द जिसकी हम को तलाश है वह मिलना चाहिए। अगर नहीं मिलता तो यह कैसा बैराग है? यह तो लखूटा बैराग है, मन्द बैराग है। जब किसी चीज से हम प्रेम करते हैं और वह हमसे छूट जाती है तो दु:ख होता है और वैसी ही दूसरी चीज मिल जाने पर वह वैराग जाता रहता है। यदि कोई स्त्री विधवा हो जाय तो उसे बड़ा दु:ख होता है लेकिन कुछ दिनों बाद अगर वह पुनर्विवाह कर लेती है तो वह बैराग जाता रहता है। असली वैराग वह है कि सब चीज मौजूद हैं लेकिन किसी में तबियत नहीं लगती, पागल कुत्तों की तरह इसलिए मारा-मारा फिरता है कि किसी तरह आत्मा का आनन्द मिल जाय। अगर दुनियाँ की सब चीजों से वैराग हो गया है लेकिन ईश्वर से अनुराग नहीं हुआ तो यह वैराग incomplete (अधूरा) है। वैराग के बाद अनुराग होना चाहिए। कहने का मतलब यह है कि रास्ता बहुत लम्बा है। जो जल्दी करेगा वह छोड़कर भाग जायेगा। अगर दिन रात अभ्यास करेगा तो पांच छ: जन्म लगना मामूली बात है।

एक रास्ता बुद्धि का है और एक मन का है यानी एक त्याग का है और एक प्रेम का है। त्याग का रास्ता यह है कि हर चीज को देखते चलो कि किस चीज में कितना आनन्द है? एक दो बार देख कर नतीजा निकाल लो कि इसमें स्थायी आनन्द नहीं है तो फिर उसे छोड़ दो। दोस्तों को देखो, रिश्तेदारों और सगे सम्बन्धियों को देखो, जहाँ कहीं तुम्हारा और उनका interest (स्वार्थ) clash करेगा (टकरायेगा) तो तुरन्त दोस्ती या रिश्तेदारी में फर्क आ जायगा, सब मुँह मोड़ जायेंगे। इससे यह नतीजा निकालो कि दुनियाँ में सब ऐसे ही हैं। चावल का एक दाना देखा जाता है। दुनियाँ में जिस चीज में आनन्द क्षण भंगुर हो उसे तर्क (त्याग) कर दो। यह बुद्धि का मार्ग है। मगर इसका नतीजा तब तक कुछ नहीं है जब तक ईश्वर से प्रेम न हो। Temporary (अस्थाई) तौर पर कभी आत्मा का प्रकाश दिखाई देता है और कभी नहीं। चन्द्रमा का प्रकाश दिखाई देता है

लेकिन बादल आकर उसे ढंक लेते हैं। इससे घबड़ाओ मत। कोशिश करते रहो, वक्त लगेगा और एक न एक दिन कामयाबी होगी। यह Negative (नकारात्मक, नफी) तरीका है।

दूसरा तरीका प्रेम का है! यह positive (सकारात्मक) है। सौभाग्य से अगर कोई सन्त मिल जाय तो उसकी सतसंगत में बैठ जाओ और अपने मन को देखो। बगैर उसकी तवज्जह किए हुए उसके अन्दर से आत्मा के प्रकाश की धारें निकलती रहती हैं जैसे हीरा कहीं भी रखा हो उसमें से प्रकाश की किरणें निकलती हैं जिनके प्रभाव से मन की चंचलता और परेशानियाँ शान्त हो जाती हैं। अगर तुम्हें आनन्द की तलाश है तो वह असली सन्त के पास मिलेगा। आत्मा पतिव्रता स्त्री की तरह है। या तो वह सोई रहती है और मन काम करता है, या वह ईश्वर से प्रेम करेगी, सिवाय उसके किसी और से प्रेम नहीं करेगी।

सन्त के पास बैठ कर आनन्द का अनुभव होता है। अगर सौभाग्य से ऐसा कोई वक्त का पूरा सन्त मिल जाय वही गुरु है। वह तुम्हें, भवसागर से पार करने आया है। उससे प्रेम करो। अगर तुम्हारी आत्मा दरअसल परमात्मा के पाने की इच्छुक है तो वह उससे चिपट जायगी। आमतौर पर किसको इसकी ख्वाहिश है? सब मन में भ्रम रहे हैं। Atmosphere (वातावरण) दूषित है, कैसे आनन्द का अनुभव होगा? सन्त के पास जाकर बैठे रहो और मन में कोई ख्याल मत आने दो। फायदा हो जायेगा। बेवकूफ लोग यह समझते हैं कि हम सन्त के पास गये लेकिन उसने हमसे बात भी नहीं की। बात की, या नहीं की, इससे तुम्हें क्या मतलब? हर वक्त उसके अन्दर से आत्मा के प्रकाश को और आनन्द की शीतल धारें निकल रही हैं जिनसे फायदा हो रहा है। सूरज चमक रहा है। अगर तुमने अपनी आंखें बन्द कर रखी हैं तो इसमें सूरज का क्या दोष है? क्या वह किसी से बात करता है? नहीं! लेकिन उसके प्रकाश और गर्मी से सबको फायदा होता है। हमारे गुरुदेव बहुत शान्त स्वभाव के थे और बहुत कम बोलते थे। उनके पास बैठने में ऐसा लगता था कि आनन्द का दरिया (नदी) बह रहा है, शंख से आंख मिली नहीं कि धड़ाम से गिर पड़े। ऐसा लगता था कि शराब की बोतल की बोतल उड़ेल दी हों। कभी उन्होंने अपनी जुबान मुबारिक (श्रीमुख) से character formation (चरित्र निर्माण, इखुलाक की दुरुस्ती) के लिए नहीं कहा। उनकी

सत्-संगति में बैठे बैठे ही उनकी कृपा से सब बुरी आदतें छूट गयीं। यह फकीरी है। ऐसा महापुरुष मिल जाय तो उससे प्रेम पैदा करो।

जब तक इन्द्रियों और बुद्धि के पर्दे शुद्ध नहीं हो जायेंगे तब तक आत्मा का प्रकाश नहीं झलकेगा। दिल के अन्दर दो कवजे (बिन्दु) काले हैं, जो आत्मा का प्रकाश नहीं आने देते। जब उनकी सफाई होकर हमारी सुरत आत्मा के पास जाती है तब असली आनन्द मिलता है। वैसा आनन्द हम दुनियां में नहीं पाते। आहिस्ता आहिस्ता (उत्तरोत्तर) दुनियाँ से नफरत (उपरति) होने लगती है। यहाँ अनुराग पहले है और वैराग बाद में।

प्रकाश रूप के दर्शन गुरु के अन्दर ही होते हैं। गुरु के स्थूल शरीर के अन्दर, परदे में क्या है? (1) अन्नमय कोष, (2) आत्मा। मिट्टी के शरीर को मूर्ति बनाये ईश्वर बैठा हुआ है। अगर प्रकाश के रूप में दर्शन होते हैं तो रास्ता ठीक है। अगर जिस्म (स्थूल शरीर) के दर्शन होते हैं तो यह गिरावट है क्योंकि वह स्थूल है। अगर शक्ल (गुरुमूरति) के दर्शन नहीं होते सिर्फ ख्याल आता है तो यह ऊँची चीज है गुरु की सौहबत (सत्संगति) में बैठकर मन शुद्ध होता है। एक अभ्यास है दूसरा फज्ल (कृपा) है, एक कस्बी है दूसरा कश्फी है(एक हठयोग है दूसरा राजयोग है। Aim यानी लक्ष्य दोनों का एक ही है, आत्मा को ऊपर चढ़ा देना और अपने प्रीतम से मिला देना। प्रेम अथवा गुरु कृपा के सहारे चलने में जो तक (त्याग) है उसके साथ खुशी है और अभ्यास द्वारा तक (त्याग) के साथ दिक्कत है। गलत कोई तरीका नहीं है। यह आपको त्पहीज (अधिकार) है कि अपने तरीके को अच्छा कहो, लेकिन किसी दूसरे फकीर या सन्त के रास्ते को गलत मत कहो। हर मजहब (मत) में सच्चाई है लेकिन तुमको वाकफियत (जानकारी) नहीं है। कहा है--

जो पै चन्द कलंक है, तऊ उजियारा होय ।

सन्त में अगर कोई बुराई देखते हो तो यह तुम्हारी अक्ल का दोष है। इन दोनों रास्तों को अपना लो। दुनियाँ की चीजों को आजमा कर छोड़ते चलो। सन्तों की सौहबत पकड़ लो। जो वह कहते हैं उस रास्ते पर चलो। वह अगर मारते हैं, तो प्यार के कारण ऐसा करते हैं, तुम्हें सीधे रास्ते पर लाना चाहते हैं। दुनिया अज्ञान में फँसी है। यहाँ हर काम उल्टा है। यहाँ आदमी की पैदाइश भी

उल्टी होती है। इस दुनिया से निकलो। मन की हालत को देखते चलो और गुरु की कृपा, उनके प्रकाश की धार (फैज) का अपने ऊपर अनुभव करते रहो। यही सतसंग है।

गुरु कृपा तब तक होती है जब तक उसके कहने में चलते हो। वरना वह कृपा जाती रहती है। उसकी राजी में रजा रहो। गुरु का सिर्फ एक रूप है। उसका एक ही काम है कि बिछड़े जीवों को ईश्वर से मिला दे। इसलिए तुम उसके साथ Cooperate (सहयोग) करो। अगर उसके साथ Rebellion (विरोध) करोगे तो फायदा क्या होगा? तुम्हें तोड़ कर रख देगा। जो उसने कहा है उसे दिमाग में रखो। ये देखते रहो कि इतना कर आये इतना और करना है। यही प्रेम का रूप है। सारा अभ्यास मन का है। मन की ही चौकीदारी करो। उसे तम से उठाकर रज पर और रज से सत पर ले जाओ। बुरे ख्यालों से उसे हटाकर अच्छे ख्यालों पर ले जाओ। अगर बुरे ख्याल आते हैं तो नाम का उच्चारण करने लगो। ख्यालात पुराने संस्कारों का नतीजा है, जिन्हें रोकना अपने बस की बात नहीं है, उन्हें पलट दो। मन के ख्यालों को पलट कर दुनियां की बजाय ईश्वर की तरफ लगा दो। साथ साथ यह भी समझ लो कि जो हो रहा है, उसकी कृपा है। दोनों तरीकों को अपनाओ। बिना दुनियाँ को छोड़े ईश्वर से प्यार नहीं होगा। बिना प्यार के दुनियाँ की चीज नहीं छूटेंगी। यही आपके यहाँ का तरीका है, यही सतसंग है।

गुरुदेव सबका कल्याण करें।

(संत वचन – भाग 5 से उद्धृत)

भजन

आरति करो मन आरति करो।
गुरु–प्रताप साधु की संगति, आवागमन ते छुटि पड़ो ।।
अन्हद ताल आदि सुध बानी, बिनु जिभ्या गुन बेद पढ़ो ।।
आरपा उलटि आतमा पूजो, त्रिकुटी न्हाई सुमेर चढ़ो ।।
सारंग सेति सुरति सों राखो, मन पतंग होइ अजर जरो।
ज्ञान को दीप बरै बिनु बाती, कह 'यारी' तह ध्यान धरो ।।

ब्रह्मलीन प्रवचन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब

समर्पण का महत्वपूर्ण पर्व है गुरु पूर्णिमा

देखा जाय तो सँसार के देशों में ऐसा कोई धर्म, सम्प्रदाय नहीं है जहाँ गुरु की महानता और महत्व के प्रति व्यास पूजा या गुरु पूर्णिमा जैसा सुन्दर पर्व मनाने की प्रथा न हो। हमारे यहाँ, हमें यह दिन जीवन के चरम लक्ष्य की ओर ले जाने वाले पूज्यतम मार्गदर्शक अर्थात गुरु की विशेष पूजा करने का अवसर प्रदान करता है।

गुरु तो अपने शिष्यों की हर प्रकार सेवा करने के कारण पूज्य और हमारी कृतज्ञता के अधिकारी सदैव से ही होते हैं। परन्तु इस शुभ दिन प्रत्येक शिष्य/साधक का विशेष प्रयास होता है कि वह अपनी प्रगाढ़ श्रद्धा को अपने सद्गुरु के प्रति आभार-स्वरुप प्रकट करे। गुरु भी विशेष उदारतापूर्वक अपने प्रिय शिष्यों पर भगवत-प्रसादी की अमृतवर्षा करते हैं।

ये जो पुष्प या पुष्प-हार गुरु को भेंट किये जाते हैं इनमें वास्तव में तो साधक का अहँकार समर्पित होना चाहिए। दीक्षा के समय यों तो सभी साधक अपने तन-मन-धन गुरुदेव के चरणों में अर्पित करने का वचन देते हैं, परन्तु वास्तव में हम स्वनिरीक्षण करके देखें कि क्या हम दे पाते हैं? तन और धन की भेंट तो सच्चे सद्गुरु चाहते ही नहीं। यदि शिष्यों की खुशी के लिए कुछ स्वीकार करते भी हैं, तो वह नाम-मात्र ही लेते हैं। वह तो 'मन' अर्थात 'अहंभाव' की भेंट लेना चाहते हैं, जिससे शिष्य का उद्धार हो जाये।

इसी प्रकार हम उनके प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए उनका चरण स्पर्श भी करते हैं। गुरुवाणी का एक बड़ा सुन्दर शबद (पद) है कि यदि जीवन का लक्ष्य प्राप्त करना है तो गुरु के चरणों को छुओ। गुरु के चरण केवल उनके शरीर के चरण नहीं हैं (इनसे भी लाभ होता है)। गुरुवाणी में जो संकेत है उसके अर्थ ये हैं कि उनके आत्मिक गुणों को अपने रोम-रोम में रमा लो, अपने भीतर में गुरु के सच्चे स्वरुप को बसा लो। हम जब तक गुरु के जो आत्मिक गुण हैं उनको अपनायेंगे नहीं और अपने अनात्मिक अवगुणों को त्यागेंगे नहीं, तब तक विशेष आध्यात्मिक प्रगति नहीं होगी। गुरु, जो ईश्वर का प्रतिनिधि स्वरुप है, उसके चरणों में माथा टेकने का मतलब

यही है कि हम सबसे पहले अपने अहँकार को, अपनी बुराइयों को, उनके चरणों में अर्पण कर दें। उनके सद्वचनों की प्रसादी लें, निर्मलता लें, उनके गुणों को अपनायें और हम वैसे ही हो जायें। वास्तव में वैसे तो हम हैं भी, पर अहँकार के कारण हम समझते हैं कि हम शरीर, मन या बुद्धि हैं। कोई समझता है कि मेरी बुद्धि तीव्र है, मैं तो अपनी बुद्धि के चातुर्य से दूसरों को प्रभावित कर लेता हूँ। ये सब मन की बातें हैं, जो हमारे रास्ते की रुकावट हैं, हमारे अहँकार को पोषित करती हैं।

गुरु पूर्णिमा पर्व के विषय में कहा जाता है कि भगवान व्यास के मन में इच्छा उत्पन्न हुई कि सब लोग गुरु की पूजा करते हैं, सो मैं किस की पूजा करूँ? इससे पहले यह घटना हो चुकी थी कि नदी में स्वच्छन्द भाव से गोपियाँ स्नान कर रहीं थी। तभी युवा पुत्र शुकदेव वहाँ से निकले। गोपियाँ उसी प्रकार से क्रीड़ामग्न निस्संकोच भाव से निर्वस्त्र-सी अवस्था में नहाती रहीं। कुछ ही देर में पीछे-पीछे कुछ वृद्ध संतों की टोली भी उधर से गुजरी तो गोपियों ने तुरन्त पर्दा कर लिया।

मुनियों को गोपियों का यह व्यवहार देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। अतः ठहर कर उन्होंने गोपियों से प्रश्न किया कि।

''हम लोग इतने वृद्ध हैं, आपके पिता समान हैं। आपने युवा शुकदेव से पर्दा नहीं किया, हमसे पर्दा क्यों किया?'' इस पर गोपियों ने उत्तर दिया कि, ''महाराज जी, शुकदेव के हृदय में स्त्री-पुरुष की भावना ही नहीं है, किसी प्रकार की द्वन्द्व भावना नहीं है। उनके हृदय में केवल परमात्मा हैं। किन्तु आपके हृदय में अभी तक स्त्री-पुरुष का भेद-भाव है। इसलिए हमने ऐसा किया।''

उन गोपियों के उत्तर ने व्यास जी को सोच में डाल दिया। इसी दशा में उन्होंने मुनि- विद्वानों से पूछा कि वे स्वयं किसकी पूजा करें? उत्तर मिला कि इस समय आपको स्पष्ट ही हो गया होगा कि शुकदेवजी के समान गुरु-पदवी योग्य अन्य कोई और नहीं है। तब उन्होंने शुकदेवजी को ऊँचे आसन पर बैठाकर उनकी पूजा की है। इसमें विशेष बात क्या है? बात वही है जो मुनियों ने व्यास जी को सुझाई थी, बताई थी। व्यास जी तो स्वयं महान ज्ञानी थे, जो शास्त्र की बातें लिखते तथा ज्ञान का उपदेश देते थे, परन्तु उनके भीतर भी द्वैत था। इस मलीनता को दूर करने के लिए उन्होंने सत्य को अपनाया और उन्होंने अपने सुपुत्र शुकदेव जी के चरणों की पूजा की और उनको गुरु का सम्मान दिया। ज्ञानी हृदय की द्वैत भावना दूर हुई।

जहाँ प्रेम है, वहाँ अहँकार और अज्ञान नहीं रहता। सूफियों की भाषा में – 'तर्के दुनियाँ, तर्के उकवा, तर्के मौला, तर्के तर्क' – अर्थात ''दुनियाँ को मन से तर्क करो, छोड़ो, फिर गुरु के ख्याल को छोड़ो, फिर ईश्वर के ख्याल को भी छोड़ो और अन्त में फिर छोड़ने के ख्याल को भी छोड़ दो।''

गुरु नानकदेव जी ने अपने प्रिय शिष्य अंगद देव जी (अंगद का मतलब होता है जिसने अपने आपको जला दिया है) को अपने स्थान पर गुरु नियुक्त किया है, उन्हें अपने स्थान पर बिठाया है और विधिवत नारियल, पुष्प आदि लाये हैं, उनसे उनकी पूजा की है और चार बार उनकी परिक्रमा करके उनके चरणों में चढ़ाई है। फिर उन्होंने अपने नाम से 'गुरु' शब्द हटाकर केवल 'नानक' रहने दिया है और उन्हें 'गुरु अंगद देव' कहकर सम्बोधित किया है। ये होता ही आया है कि जब गुरु अपने उत्तराधिकारी शिष्य को अपना स्थान देता है तो उसकी पूजा करता है।

पाँचवे सिख गुरु अर्जुनदेव जी रात को जब सब सो जाते थे, तो वे अपने गुरु के पैरों को गर्म पानी से धोते थे। उनकी दाढी लम्बी थी, उस दाढ़ी से वे उनके पाँव पोंछते थे। शिष्य तो अपने गुरु की सेवा प्रेम से करते ही हैं, गुरु भी अपने शिष्य से अत्यंत प्रगाढ़ प्रेम करते हैं।

हमारे दादा गुरुदेव पूज्य लालाजी (महात्मा रामचन्द्र जी महाराज) के दर्शन जिन्होंने किये हैं और उनकी संगति प्राप्त की है, वे जानते हैं कि वे रात्रि को 10–11 बजे आते थे। सब लोग फर्श पर सोये हुए होते थे, कोई खाली जगह न मिलने पर जहाँ जूते पड़े होते थे, वे वहाँ चुपचाप सो जाते थे।

महापुरुषों की लीला हमेशा से होती आयी है। वे इसलिए लीला करते हैं कि हमें उनके जीवन से प्रेरणा मिले। यदि वे ऐसा न करें तो हमें प्रेरणा कैसे मिलेगी? केवल शब्दों से प्रेरणा नहीं मिलती। उनका जीवन हमारे लिए एक मिसाल होता है। वो हमारे दिशा–बोध के लिए प्रकाश–स्तम्भ होते हैं, ध्वज जैसे होते हैं जिसके पीछे–पीछे हम लोग चलें।

पूज्य गुरुदेव (महात्मा डॉ श्रीकृष्ण लालजी महाराज) की सेवा में सेवक शुरू–शुरू में दिल्ली से सिकन्दराबाद गया, बड़ी गर्मी थी। उन दिनों शायद सिकन्दराबाद में पंखे नहीं लगे थे। खस–खस की टट्टी लगी थी। आपने मुझे ठंडा पानी पिलाया और कहा कि ''आप थोड़ी देर लेट जाइये, मैं अभी आता हूँ।'' यह कहकर वे घर के अन्दर

चले गए। तब घर में न तो कोई नल हुआ करते थे और न कोई जल–प्रदाय (water supply) के साधन ही हुआ करते थे। बस एक कुआँ था, गहरा सा। आपने उसमें से दो बड़ी–बड़ी बाल्टियाँ पानी भरा और स्नानगृह में रख दिया। अपने हाथ से उठाकर मेरी चप्पलें बाहर रख दीं। एक धुली हुई धोती और तौलिया भी वहाँ लटका दिया। फिर आकर मुझसे कहा कि, ''आप स्नान कर लीजिये, फिर भोजन करेंगे।'' ऐसे प्रेमिल और कृपालु होते हैं, ये गुरुजन। संत ऐसे ही आत्मस्थित रहते हुए संसार का काम करते हैं।

भगवान राम का जीवन आप सब जानते हैं। उन्होंने मनुष्य के रूप में साधारण साधक बन कर वशिष्ठ जी, विश्वामित्र जी और बाल्मीकि जी से उपदेश लिया। उपदेश लेकर वह कहीं चले नहीं गए। उन्होंने अपने जीवन का उदाहरण देकर बता दिया कि जीवन कैसे जीना चाहिए। एक समय ऐसा था कि जब भगवान राम को पता था कि 2–4 घंटे में ही वे राजगद्दी के उत्तराधिकारी होने वाले हैं। आपको चक्रवर्ती राजा घोषित किया जा रहा है, परन्तु शीघ्र ही उन्हें उससे वंचित करके वनवास दे दिया जाता है। अचानक आज्ञा होती है कि 14 वर्ष के लिए वनवास करो। एक ओर महान सुख, दूसरी ओर महान दु:ख। वे संसार को दिखाते हैं कि कैसे ऐसी अवस्था में भी अत्यन्त शान्त और समभाव में रहते हुए बिना किसी अन्य विपरीत भाव के जीवन जिया जा सकता है।

सीता जी जो अत्यन्त कोमल हैं, जिनके पाँव तले फूल बिछते थे, गद्दे और कालीन रहते थे, उनको भी कह दिया जाता है कि वन में चली जाओ, वनवासी पति की हर प्रकार से सेवा करो। जंगल से लकड़ी, भोजन आदि का प्रबन्ध करो, आदि–आदि। वास्तव में उन्होंने अपनी स्वयं की इच्छा से ऐसा जीवन स्वीकार किया। वो महान स्त्री थीं, एक आदर्श जीवन जीकर सबको प्रेरणा देती हैं कि संकट के समय भी अपना कर्तव्य और धर्म तथा धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए।

जितने भी महापुरुष हुए हैं (भगवान राम, श्रीकृष्ण जी तथा अन्य संत आदि) वे प्रत्येक साधक को प्रेरणा देते हैं कि हम अपने अहंकार को छोड़ें और दीनता को अपनायें। पुरातन काल में न जाने कितने ऐसे महापुरुष हुए होंगे जिन्होंने परमज्ञानी होते हुए भी दीनता को अपनाया। जब तक दीनता नहीं आएगी, साधना नहीं होगी।

परमसंत कबीर साहब को ही लीजिये। कितने दीन बने, मानो सारा संसार उनसे अच्छा है, बस वही बुरे हैं

''बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न दीखा कोय!
जो घर खोजा आपना, मुझ से बुरा न कोय!!''

गुरु नानक देव जी भी कहते हैं- ''जेता सागर नीर भरा, तेते अवगुन मोहिं'' और उन्हीं की दीनता है कि, ''निं दौ, निंदौ मोकहि निंदौ''

आज का पवित्र दिन अपने पूज्य गुरुदेव के चरणों में पुनः समर्पण करने (rededication) का दिन है। यह शरीर भी आपका, यह मन भी आपका और सब कुछ आपका, परन्तु यह सब कहने भर के लिए नहीं, सचमुच मन से समर्पण होना चाहिए।

हम तो यह सब भूल ही जाते हैं। सत्संग खत्म होते ही खाने-पीने में, बातों में लग जाते हैं तथा सब भूल जाते हैं। ये मन की वृति है। किसी का दोष नहीं है। चाहिए यह कि हम क्षण प्रति क्षण जाग्रत रहें और प्रयास करें कि हमारा मन प्रत्येक क्षण गुरु-चरणों में लीन रहे।

आज हम सब मिलकर पूज्य गुरुदेव की जीवन-लीला का स्मरण करें। उन्होंने अपने जीवन से जो उदाहरण हमारे सामने रखे हैं, हम वैसा आदर्श जीवन जियें, जीने का अधिक से अधिक प्रयास करें। हम उनके पद-चिन्हों पर चलने का पुनः संकल्प करें।

गुरु सेवा का सर्वोतम रूप - सेवा कई प्रकार की होती है। हाथ-पाँव की सेवा, धन की सेवा, परन्तु मन की सेवा बहुत ऊँची है। यानी जो कुछ आपके इष्टदेव कहें, वही हुक्म है। उनकी आज्ञा का पालन करें। यदि यही बात ध्यान में रखें कि जो भी गुरु महाराज के आदेश हैं - उन्हीं का पालन करते चले जायें तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आत्मा का साक्षात्कार दूर नहीं है।

परन्तु हम ऐसा करते नहीं हैं। हम उनकी बातों की तरफ ध्यान नहीं देते, अपनी मनमानी करते हैं। दीक्षा लेते समय जब हमने तन, मन, धन देने का वचन दिया तो हमारा अब इन चीजों से मोह क्यों है? परन्तु है कोई ऐसा व्यक्ति जिसको अपने शरीर से मोह न हो, अपनी धन-सम्पत्ति या स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों के प्रति आसक्ति न हो या जिसने अपने विचारों को छोड़ दिया हो?

काफी समय हो गया है। आपसे बारम्बार यही अनुरोध करूँगा कि जो आपके इष्टदेव के आदेश हों, उनके पालन में कभी संकोच या विलम्ब नहीं करना चाहिए। विश्वास मानिये कि इसी सेवा के द्वारा आप आत्म–साक्षात्कार करके अपना जीवन सफल कर लेंगे, मानव जीवन को धन्य और सार्थक कर सकेंगे।

गुरुदेव आप सब पर कृपा करें। उनकी कृपा तो हम सब पर बरसती ही रहती है। सूफियों में इसे 'फ़ैज' कहते हैं। इसे हर वक्त ग्रहण करते रहना चाहिए। सूर्य तो प्रकाश देता है पर यदि हमारे घर की खिड़की बंद हो तो हम उस प्रकाश यानी फ़ैज से वंचित रह जाते हैं।

इस कृपा को ग्रहण करने का साधन ही हमारे यहाँ कराया जाता है। यह जरुरी नहीं कि गुरु शारीरिक रूप में ही आपके पास बैठा हो। आपका ध्यान उसकी तरफ हो तो वह भी गुरु का संग है।

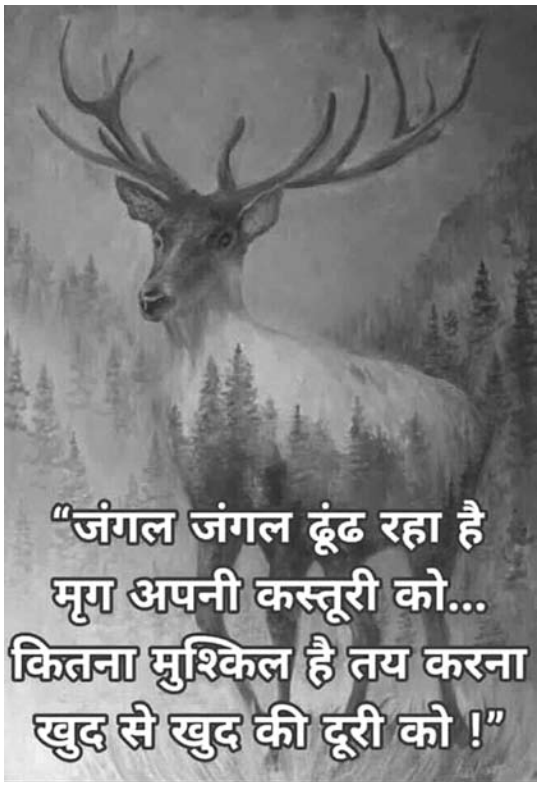

मेरे से जो सेवा हो सकती है, जैसी भी मैंने आज तक की है, अच्छी या बुरी, उसे स्वीकार करें और मेरे लिए भी प्रार्थना करें कि मैं भी आपकी योग्य सेवा कर सकूँ – हाथ–पाँव से, शरीर से, मन से तथा आत्मा से, हम सब मिलकर प्रार्थना करें कि आज के पावन पर्व पर गुरुदेव हमें शक्ति दें कि जैसा वे हमसे आशा रखते थे वैसे हम बनें – अपना जीवन सफल करें।

(संत प्रसादी–
भाग 16 से उद्धृत)

नचिकेता

वाजश्रवा नाम के एक ऋषि थे। एक बार उन्होंने सर्वमेध यज्ञ किया। इस यज्ञ को जो व्यक्ति करता है, वह सब कुछ दान कर देता है। वह मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर सकता है।

यज्ञ के आखिरी दिन वाजश्रवा ने दान देना शुरू किया। उनके पास गायें अधिक थीं। दान देते-देते वे सोचने लगे कि यदि इस प्रकार सारी अच्छी गौएँ दे दूँगा तो मेरे पास कुछ भी नहीं बचेगा। वे चालाकी से काम लेने लगे। अच्छी- अच्छी गायों को छिपाकर बूढ़ी-बूढ़ी गौएँ बाँटने लगे।

यह बात उनके लड़के को अच्छी नहीं लगी। लड़के का नाम नचिकेता था। वह अभी आठ साल का था। वह सोचने लगा- 'कहीं पिताजी मेरे लिये तो ऐसा नहीं कर रहे हैं।' वह दौड़ता हुआ पिता के पास गया और बोला- 'पिताजी! ये सब गौएँ तो आपने ब्राह्मणों को दे डालीं और अब मुझे किसे दीजियेगा।'

यह सुनकर पिता को बड़ा गुस्सा आया। वे नचिकेता को डाँटने लगे। उन्होंने डाँटते हुए कहा, 'मैं तुझे यमराज को दूँगा।' यह सुनकर नचिकेता ने यमराज के पास जाने की तैयारी कर ली। उसके पिताजी को यह बात मालूम हुई। उन्हें बड़ा दु:ख हुआ; क्योंकि उन्होंने आवेश में यह कह दिया था। नचिकेता को बिल्कुल डर नहीं लगा और वह यमराज के पास जाने के लिये तैयार हो गया। पिता ने उसे रोकने की कोशिश की। नचिकेता ने एक न सुनी और कहा, 'हमें यमराज से डरना नहीं चाहिये। जिस प्रकार वे मृत्यु के देवता हैं, उसी प्रकार जीवन के भी। हम अपने पापों के कारण उनसे डरते हैं।'

इतना कहकर नचिकेता ने पिता के चरण छुए। वह वहाँ से चला गया। बहुत दूर चलने के बाद वह यमराज के द्वार पर पहुँचा। यमराज कहीं बाहर गये हुए थे। नचिकेता बाहर ही ठहर गया। जब यमराज लौटकर आये, तब उन्होंने चबूतरे पर मुनिकुमार को देखा।

यमराज ने पूछा- 'तुम कौन हो?' नचिकेता ने नम्रतापूर्वक कहा - 'मैं वाजश्रवा मुनि का पुत्र हूँ। मेरा नाम नचिकेता है। मेरे पिताजी ने सर्वमेध यज्ञ किया था। उन्होंने उस यज्ञ की दक्षिणा में मुझे आपके सुपुर्द किया है।'

यमराज को बड़ा अचम्भा हुआ। उन्होंने नचिकेता से पूछा- 'तुम्हें मेरे पास आने में डर नहीं लगा?' नचिकेता ने उत्तर दिया- 'भगवन्! सांसारिक मनुष्य हमें डरा देते हैं। हमें डरना नहीं चाहिये। आप तो सबकी भलाई करते हैं। यदि कोई मनुष्य मरे नहीं तो उसके दुःख भी दूर नहीं हो सकते।'

यमराज बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने नचिकेता से कहा- 'तुम मुझसे तीन वर माँगो।' नचिकेता ने कहा- 'मैं तो आपकी दक्षिणा हूँ। आप बड़े महान हैं। आपकी कृपा है जो मुझे वर दे रहे हैं।' सबसे पहले उसने अपने पिता को प्रसन्न करने की प्रार्थना की। उसकी इच्छा पूर्ण हो गयी।

फिर उसने कहा- 'कृपा करके मुझे स्वर्गप्राप्ति की विद्या दीजिये।' उसको यह भी वरदान मिल गया।

इसके बाद नचिकेता ने कहा- 'मुझे आत्मा के स्वरूप के बारे में बतलाइये। मरने के बाद मनुष्य का क्या होता है?' यह सुनकर यमराज को बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने कोई दूसरा वरदान माँगने के लिये कहा। नचिकेता ने कहा- 'आप मुझे यह बता सकते हैं। मैं तो यही सीखना चाहता हूँ।'

यमराज ने फिर समझाया, 'इस वरदान के स्थान में तुम मन-चाहे रथ-हाथी-घोड़े, बाग-बगीचे, महल-नौकर-चाकर माँग लो। तुम यह वर मत माँगो। तुम अभी छोटे हो।'

नचिकेता ने यह सुनकर कहा- 'महाराज! संसार की सब वस्तुएँ नाश हो जानेवाली हैं। मुझे इन चीजों की जरूरत नहीं। मैं तो यही जानना चाहता हूँ कि मरने के बाद मनुष्य का क्या होता है।'

यमराज यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा - 'संसार में मनुष्य के सामने दो रास्ते आते हैं- एक हितकर, दूसरा सुखकर। एक आत्मिक कल्याण का, दूसरा भोग-विलास का। मनुष्य संसार की वस्तुओं से प्रेम करते हैं और आत्मा की उन्नति की ओर ध्यान नहीं देते। जो मनुष्य आत्मा की उन्नति की ओर ध्यान देते हैं, वे सुखी रहते हैं।'

नचिकेता को यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने सांसारिक सुखों के स्थान में आत्मा की उन्नति को ही अच्छा समझा। यमराज ने उसे आत्मा के स्वरूप का ज्ञान कराया। वह उसे पाकर बड़ा सुखी हो गया।

(गीता प्रेस से)

कबीर दास

गुरु महिमा

गुरु मिले तब जानिये, मिटे मोह तन ताप।
हर्ष शोक व्यापै नहीं, तब गुरु आपै आप।।

कबीर वे नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहि ठौर।।

सत्य नाम के पटतरे, देने को कुछ नाय।
कहँ लग गुरु संतोषिये, हबिस रही मन माँय।।

मन दिया जिन सब दिया, मन के संग शरीर।
अब देने को क्या रहा, यूँ कथ कहे कबीर।।

तन मन दिया तो भल किया ज्ञानी सर का भार।
जो कब हूँ कह "मैं" दिया तो बहुत सहेगा मार।।

निज मन को नीचे किया, चरण कंवल की ठौर।
कहे कबीर गुरुदेव बिनु, नजर न आवे और।।

सतगुरु पूरा न मिला, सुनी अधूरी सीख।
स्वांग यति का पहन कर घर-घर माँगी भीख।।

गुरु समान दाता नहीं, याचक शीष समान।
तीन लोक की संपदा, सो गुरु दीन्हीं दान।।

गुरु को सिर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं।
कहैं कबीर तो दास को, तीनों लोकों भय नाहिं।।

गुरु की आज्ञा आवै, गुरु की आज्ञा जाय।
कहैं कबीर सो संत हैं, आवागमन नशाय।।

गुरु पारस को अन्त रो, जानत हैं सब संत।
वह लोहा कंचन करे, ये करि लये महंत।

दिव्य धारा से

अनमोल वचन

पूजा से पहले प्रार्थना करते हैं, परमात्मा के गुणों को याद करते हैं, उसके गुणों को सराहते हैं। उसके लिये वायुमंडल, वातावरण बना लिया, परमात्मा की नजदीकी हासिल कर ली, अब उससे प्रार्थना करो, जो माँगना है माँगो। फिर उसकी प्रसादी लेने के लिये अपने आप को उसको समर्पित कर दो। उसकी कृपा की गंगा में स्नान करो, डुबकी लगाओ।

******

भीतर में तनिक भी अहंकार न रहे – मेरापन न रहे। ''...तू...तू'' की रट रहे और इसी रट में उस सर्वोच्च स्थिति में पहुँच जाएं जहाँ का वर्णन करने के लिये शब्द नहीं होते। यह स्थिति रोम रोम में बस जाये।

******

प्रभु चरणों में पहुँचने का सरलता ही एकमात्र साधन है। बच्चों की तरह हमें सरल बनना है। तभी प्रभु चरणों में पहुँचने के अधिकारी बन सकते हैं।

******

और कुछ नहीं कर सकते तो कम से कम अपने विचारों को तो कम करें और चिंतन का अभ्यास करते करते शून्य हो जायें। अगर कोई व्याकुलता हो भी तो एकमात्र भगवान के दर्शन की ही हो।

******

विचार ही हमारी आत्मा और परमात्मा के बीच की दीवार है। अभ्यास करना है कि भीतर में विचार न उठें या कम से कम उठें। साधना यही करनी है कि मन हमारे अधीन हो जाये।

******

अपना आत्म निरीक्षण करते रहना चाहिए। कोशिश करनी चाहिए कि हम निर्विचार हों और निर्विकार हों।

******

आंतरिक मौन में रहने का अभ्यास करें। एक असीम शक्ति उदय होती है, अन्दर में मौन रहने से।

******

संसार के प्रति पकड़ को ढीला छोड़ दें। जो अतीत में हो चुका है उसे क्यों पकड़ें। भूल जाइये, बच्चों की चिंता माँ बाप को होती है। यदि परमात्मा में विश्वास है तो कल के लिये चिंता क्यों? यह हमारी भूल है, नासमझी है हमारी। ईश्वर की गोद में बच्चों की तरह बैठना है। वह हमारा सच्चा पिता है। पिता के रहते बच्चों को चिंता की क्या आवश्यकता?

******

हमारी वाणी में प्रेम हो। हमारे व्यवहार में प्रेम हो। सच्चे बनें, स्वयं प्रेम रूप बनें और अपने व्यवहार द्वारा ईश्वर के प्रेम को विस्तार दें। जितना हम प्रेम बाँटेंगे उतना ही यह बढ़ेगा, एक दाना भी कम होने वाला नहीं। यह कम तभी होता है जब प्रेम के वितरण में कंजूस हो जायें।

******

''सब का भला करो भगवान'' आपने जो प्रार्थना सुनी, सब भाई-बहन आपस में एक परिवार की तरह मिल कर रहें। आपस में प्रेम से रहें। दूसरे के दुख को अपना दुख और दूसरे के सुख को अपना सुख समझें। दूसरों की सेवा करें, तभी तो हमारी प्रार्थना का सही मतलब निकलेगा।

******

सत्संग से यह प्रसादी ले कर आपको घर जाना है कि भीतर में किसी के प्रति द्वेष की भावना न हो, किसी के प्रति ईर्ष्या की भावना न हो, किसी के प्रति घृणा की भावना न हो। सेवा का भाव हो, प्रेम का भाव रखना है। संतुलन का भाव हो, सेवा बलिदान का भाव ले कर लौटें।

******

परवाह ना कर तमाशे होते रहेंगे ताउम्र,
तू ये ख्याल रख कि किरदार बेदाग रहे।

नाम रस जो जन पिए धड़ पर शीश न होय

संत कबीर के समकालीन एवं उनके परम शिष्य धरमदास जी द्वारा प्रतिपादित यह एक महत्वपूर्ण एवं गहन आध्यात्मिक सूत्र है। धरमदास जी संत कबीर के प्रधान शिष्य, उत्तराधिकारी, एवं कबीर पंथ के उच्चतम श्रेणी के साधक रहे हैं। सामान्य तौर पर इनका जिक्र कम ही मिलता है परंतु वर्तमान समय में हमारे पास संत कबीर के जो भी वचन एवं जो भी रचनाएँ उपलब्ध है उसका श्रेय धरमदास जी को जाता है।

संत कबीर अपने समय के कोई स्थापित कवि नहीं थे, वे तो बस अपने ज्ञान को सहज, सरल, रुचिकर एवं संप्रेषणीय बनाने के लिए सत्संगो में अपने स्वत: स्फूर्त पदों या दोहों का गायन करते रहते थे। कबीर दास के द्वारा न तो प्रयासपूर्वक कोई रचना की गयी न ही उनको अपनी रचनाओं का संकलन आता था क्योंकि उन्होंने तो एलानिया स्वीकार किया था ''मसि कागद छूयो नहीं, कलम गह्यो नहीं हाथ'', अब ऐसी स्थिति मे उनके उपदेश परक पदों एवं दोहों के संकलन का दायित्व उनके शिष्यों का था और इस क्रम मे सर्वाधिक भूमिका धरमदास जी की रही जिन्होंने सतत रूप से कबीर दास के सत्संगों मे सहभागी रहकर उनके ज्ञान को संकलित करते रहे।

कबीरदास के अवसान के बाद धरमदास जी उनके उत्तराधिकारी बने और संत कबीर से संकलित ज्ञान को संपूर्ण विश्व को सौंपा। आध्यात्मिक जगत में यह संत धरमदास का बहुत बड़ा अवदान है लेकिन इसके बावजूद भी वो अल्पश्रुत एवं अल्पख्यात रहे, इसका मूल कारण भी उनके द्वारा प्रतिपादित इस आध्यात्मिक सूत्र में है ''नाम रस जो जन पिए धड़ पर शीश न होय'' जिसका भावार्थ है कि ''जिसने भी नाम रस का पान किया उसके धड़ पर शीश नही रहा'' अर्थात उसके ''स्व'' की भावना समाप्त हो गयी। संत धरम दास जी ने भी नामरस का आकंठ पान किया था जिससे उनका ''स्व'' विसर्जित हो गया था। संत धरमदास नाम रस के पान के बाद उस अवस्था को उपलब्ध हो गये जहाँ धन मान आदि के लिए कोई स्थान ही नहीं बचा, न ही उसकी आकांक्षा शेष रही यही कारण है कि धरमदास जी आध्यात्मिक जगत के लिए इतने महत्वपूर्ण अवदान के बाद भी अल्पख्यात रहे, अपने को प्रचारित नहीं किया। उन्होंने अपनी इस अवस्था को स्वयं ही अपने एक पद में व्यक्त किया है

''धरमदास पी छकित भये हे और पिए कोई दासा'', अर्थात धरम दास नाम रस के पान से छक चुके हैं और नाम रस के इस आकंठ पान के पश्चात "शीश" बचने की गुंजाइश ही कहा बची, ''स्व'' के शेष रहने की सारी संभावनाए ध्वस्त हो गयी।

लौकिक जगत मे ''स्व'' मनुष्य के मनोभावों द्वारा सृजित सबसे महत्वपूर्ण रचना है जिसे वह अपने धन के दंभ से, पराक्रम से, महत्ता से, अहंकार से, वैभव से, यश से और ऐसी अनेकानेक आत्मकल्पित तथ्यों से रचता है जो उसे सहज अवस्था से दूर करती हो, जो कि आत्मबोध का प्रथम सोपान है। मन की सहज अवस्था आत्मबोध का प्रथम चरण है। संत धरम दास ने अपने आध्यात्मिक सूत्र में शीश को स्व का पर्याय के रूप में प्रस्तुत किया है उनके इस भाव को सहज ही समझा जा सकता है जैसे शरीर के अंगो में शीर्ष पर शोभित होने के कारण शीश महत्वपूर्ण है उसी प्रकार लौकिक जगत में सभी मानव स्व की अनुभूति से अभिभूत है। जिस प्रकार मानव अंगो मे सर्वश्रेष्ठ शीश सदैव उन्नत रहता है, झुकता नहीं है, वैसे ही स्व के बिना लौकिक जगत में व्यक्ति अपने अस्तित्व की कल्पना ही नहीं कर पाता।

अपने स्व के श्रेष्ठता के भ्रम में मनुष्य वैसे ही भ्रमित रहते है जैसे शरीर के शीर्ष पर अवस्थित किसी के सामने न झुकने वाला शीश। धरमदास जी कहते हैं कि नाम रस के पान मात्र से आत्मबोध की अवस्था प्राप्त हो जाता है, स्व के अस्तित्व का तिरोधान हो जाता है और स्व के अस्तित्व से मुक्ति मिल जाती है।

संत धरमदास जी के इसी सूत्र को प्रकारांतर से समझे तो यह प्राप्त होता है कि यदि किसी के धड़ पर शीश दिख रहा है अर्थात यदि स्व कि अनुभूति शेष रह गयी है तो यह निश्चित जानना चाहिए कि नाम रस का पान ठीक प्रकार से नहीं हुआ, या हुआ ही नहीं। स्व की अनुभूति का शेष रह जाना यह दर्शाता है कि आत्मबोध की यात्रा अधूरी रह गयी।

यहाँ पर एक और तथ्य को समझना अत्यंत महत्वपूर्ण है और वह यह है कि लौकिक जगत मे निर्मित हमारे स्व को नष्ट नहीं किया जा सकता, इसे प्रयासपूर्वक विसर्जित करना पड़ता है, त्यागना पड़ता है। यदि स्व को नष्ट करने का प्रयास किया जाता है तो इसके पुनः प्रस्फुटित होने की संभावना रह जाती है, ठीक वैसे ही, जैसे विपुल प्रयास से अर्जित धन के नष्ट हो जाने पर भी धन के संग्रहण की लिप्सा समाप्त

नहीं होती है और पुनः अवसर उपलब्ध होने पर मनुष्य पूर्ववत् धन संग्रहण के उद्योग में लग जाता है।

संत धरमदास जी का स्व भी इसी प्रकार प्रयास पूर्वक विसर्जित हुआ था। संत धरमदास जी का जन्म वर्तमान मध्यप्रदेश के बांधवगढ़ के एक अत्यंत सम्पन्न साहूकार के यहाँ हुआ था। कहा जाता है कि उनके पूर्वज इतने सम्पन्न थे कि जब कभी बांधवगढ़ के नवाब को आपत्ति काल में धन की आवश्यकता होती थी तो वे धरमदास जी के परिवार से उधार लेते थे। अब ऐसे सुसंपन्न परिवार में धरमदास जी के पास धन एवं लौकिक सुखों की कोई कमी तो थी नहीं फिर भी उनकी सात्विक वृत्ति इतनी तीव्र थी कि युवावस्था से ही वैष्णव संप्रदाय मे दीक्षित होकर वे अपना अधिकतर समय तीर्थाटन सत्संग एवं साधु सेवा में व्यतीत करने लगे। परंतु लंबे समय तक वैष्णव सत्संग से भी उनकी आध्यात्मिक शंकाए दूर नही हो रही थी, उनके प्रश्न अनुत्तरित रह जा रहे थे इसी क्रम मे तीर्थाटन के दौरान मथुरा में उनकी मुलाकात संत कबीर से हुई। कबीर से प्रभावित होकर धरमदास जी कालांतर में काशी आए जहाँ कबीर से विधिवत दीक्षा लेते हुए वो उनके सत्संगों में सतत रूप से सहभागी होने लगे, धरमदास जी संत कबीर के उपदेशों को आत्मसात करने लगे और आत्मबोध को उपलब्ध हो गये। कहा जाता है कि संत कबीर धरमदास जी को ''धनी धरमदास'' कह कर संबोधित करते थे परंतु प्रारंभ से ऐसा नहीं था, आत्मबोध को उपलब्ध हो जाने के उपरांत ऐसी जनश्रुति है कि धरमदास जी ने अपनी संपूर्ण संपत्ति को लुटा दिया और जब वो संपत्ति से जुड़े ''स्व'' से मुक्त हुए तब कबीर दास जी ने उन्हें धनी धरमदास के नाम से संबोधित किया। इस प्रकार संत ध रमदास जी अपना सर्वस्व लौकिक संपदा स्वयं विसर्जित कर आध्यात्मिक जगत के धनी हो गये। सही अर्थों मे स्वयं द्वारा सृजित स्व को नष्ट कर ही आध्यात्मिक जगत को उपलब्ध हुआ जा सकता है।

स्व के विसर्जन एवं ईश्वरोपलब्धी के अन्य अनेकानेक उदाहरण है। श्रीमद्भागवत महापुराण की कथा है कि द्रविड़ देश के पराक्रमी नरेश इंद्रद्युम्न महर्षि अगस्त्य के शाप से गजेन्द्र बन कर त्रिकूट पर्वत के तराई में स्थित गहन वन में अपनी सहगामिनी हथिनियों के साथ निवास कर रहे थे। गजेन्द्र अपनी अपरिमित शक्ति एवं पराक्रम के

कारण उस समस्त वन प्रदेश में निर्द्वंद भाव से सपरिवार विचरण करते रहते थे, अपने युवावस्था एवं बल के कारण वे अजेय थे। एक दिन दैववश वन में विचरण करते हुए गजराज अपने दलबल के साथ जंगल के मध्य में स्थित उस रमणीक सरोवर के पास पहुँचे जिसमे ऋषियों के श्राप से ग्राह (मगरमच्छ) बना एक गंधर्व निवास करता था। गजराज ने प्रथमत: सपरिवार सरोवर के शीतल जल का पान किया और इसके बाद सरोवर के जल मे क्रीड़ा करने लगे। इसी दौरान शापग्रस्त गंधर्व जो कि ग्राह के रूप मे उस सरोवर में विद्यमान था ने गजेन्द्र के पैर को पकड़ लिया और क्रमश: उसे सरोवर के मध्य में ले जाने के लिए उद्यत हुआ, गजेन्द्र के द्वारा अपनी पूरी ताकत से ग्राह का प्रतिकार किया गया और गज एवं ग्राह के मध्य यह युद्ध एक हजार वर्षों तक चलता रहा। लगातार लंबे समय तक युद्ध करते करते गजराज धीरे-धीरे शिथिल पड़ने लगे परंतु जलचर होने के कारण ग्राह के ताकत में कोई कमी नहीं आई। शिथिल पड़ते गजराज को ग्राह क्रमश: सरोवर के मध्य में ले जाने लगा और धीरे धीरे गजराज सरोवर के जल मे डूबने लगे। प्राण रक्षा की कोई भी संभावना शेष बचता न देखकर गजराज ने सरोवर से एक कमल का पुष्प लेकर उसे विष्णु भगवान को समर्पित करते हुए अपने प्राण रक्षा के लिए स्तुति की। गजेन्द्र द्वारा की गयी यह स्तुति ''गजेन्द्र मोक्ष'' के नाम से प्रचलित है जिसे सुनकर भगवान विष्णु प्रसन्न हुए और तत्काल ग्राह का वध कर गजेन्द्र को उससे मुक्ति दिलाई। इस कथा का मूलभाव यह है कि जब तक गजेन्द्र अपनी रक्षा के लिए अपनी शक्ति के भरोसे रहे तब तक उन्हें कोई दैवीय सहयोग उपलब्ध नहीं हुआ परंतु जैसे ही गजेन्द्र ने अपने शक्ति के दंभ द्वारा निर्मित अपने स्व का विसर्जन कर स्वयं को ईश्वर के आधीन किया उसे दैवीय सहयोग उपलब्ध हो गया।

इसी प्रकार एक प्रसंग आदि शंकराचार्य जी के जीवन से संबंधित है। कहा जाता है कि संपूर्ण दक्षिण एवं मध्य भारत में अपने अद्वैत दर्शन की विजय पताका फहराते हुए वे अपने धर्मविजय के दौरान काशी आए। काशी में लंबे प्रवास के दौरान उन्होंने अनेक विद्वानों को अपने अद्वैत दर्शन के तर्कों के आधार पर पराजित कर दिया था। काशी के विद्वत समाज में आदि शंकराचार्य जी के नवीन अद्वैत दर्शन की काफी धाक जम गयी थी। शंकराचार्य जी का दर्शन तार्किक रूप से भले ही अत्यंत सशक्त

प्रतीत हो रहा था लेकिन व्यवहार में कहीं न कहीं कोई कमी शेष रह जा रही थी। इसी क्रम में एक सुबह शंकराचार्य जी अपने शिष्यों के साथ गंगास्नान कर के काशी विश्वनाथ के दर्शनार्थ जा रहे थे उसी समय सामने मार्ग मे झाड़ू लगा रहे एक चांडाल के कारण शंकराचार्य जी एवं उनके शिष्यों को अपनी पवित्रता नष्ट होने का भान हुआ और उन्होंने चांडाल से रास्ता छोड़ देने की बात कही, शंकराचार्य की बात सुन कर चांडाल ने उनसे एक प्रश्न किया ''महाराज आप ने अभी जिसे हटने के लिए कहा क्या वह मेरे अन्नमय कोष से पोषित शरीर को कहा या उसके भीतर विराजमान चिरंतन आत्मा को?''

शंकराचार्य जी ठिठके, प्रश्न अत्यंत गूढ़ था। वो कुछ बोलते इस से पूर्व ही चांडाल ने पुनः अपने प्रश्नों को विस्तार देते हुए कहा कि ''यदि आपने मेरे अन्नमय कोष से पोषित शरीर को हटने के लिए कहा है तो मेरे और आपके शरीर मे क्या भेद है, दोनो ही अन्नमय कोष से पोषित है, और यदि आपने इसके भीतर अवस्थित आत्मा को हटने के लिए कहा है तो हे महात्मन उस स्तर पर भी हमारी और आपकी आत्मा में कैसा भेद?''

अब शंकराचार्य जी समझ चुके थे .... प्रथम बार उन्हें अद्वैत दर्शन का व्यवहारिक प्रमाण प्राप्त हुआ था .. उन्होंने तत्काल बिना भेद के उस चांडाल की दण्डवत वंदना की और उस चांडाल की अभ्यर्थना में ''मनीषा पंचकम'' की रचना की जो अद्वैत दर्शन के गूढ़ और आधारभूत तत्वों को दर्शित करता है।

कथा सार यह है कि जब तक शंकराचार्य जी मे श्रेष्ठता का लेशमात्र अंश भी शेष रहा वे अद्वैत दर्शन के सही रूप को नहीं समझ पाए तथा जैसे ही उन्होंने अपने श्रेष्ठता के स्व का विसर्जन किया उन्हें अपने दर्शन का मूल रहस्य प्राप्त हो गया।

उपरोक्त तीनों कथानक को समग्रता से देखने पर इनका मूल भाव एक ही प्राप्त होता है। धरमदास जी परम आध्यात्मिक होते हुए भी जब तक अपने ''स्व'' को अपने कौटुम्बिक संपदा से जोड़े रहे तब तक वे कबीर दास की दृष्टि में ''धनी'' नही थे और जैसे ही उन्होंने प्रयासपूर्वक अपने को धन से संबंधित स्व से स्वयं को पृथक किया वैसे ही वो धरमदास से ''धनी धरमदास'' हो गये। इसी प्रकार जब तक गजेन्द्र को अपने पराक्रम पर भरोसा रहा तब तक वह ईश कृपा से वंचित रहा परंतु

जैसे ही उसने अपने पराक्रम से संबंधित स्वयं के अस्तित्व का विसर्जन किया उसी क्षण वह ईश्वर की परम कृपा का भागी बन गया। शंकराचार्य जी के मन मे जब तक अपनी जातीय और ज्ञानात्मक श्रेष्ठता का भान रहा तब तक वे अपने ही गठित दर्शन अद्वैत के मूलभाव से वंचित रहे परंतु जैसे ही चांडाल के गूढ़ प्रश्नों ने उनके ज्ञान सागर को पुनः तरंगित किया वैसे ही वे उस चांडाल के समक्ष विनत होकर उसमें एवं स्वयं में भेद का तिरोधान कर दिया और इसी के साथ उनकी अद्वैत की प्रतिपादना पूर्ण हो गयी।

अतः लौकिक जगत द्वारा सृजित ''स्व'' के परित्याग के बिना आत्मबोध और कल्याण का अन्य कोई साधन नहीं है। स्वयं को निर्विवाद रूप से परम सत्ता के आधीन मानते हुए और समस्त लौकिक धन, पद, मान, यश आदि को स्वयं की उपलब्धि न मानकर ईश्वर की अहैतुक कृपा के रूप में विनत भाव से स्वीकार करना ही श्रेयस्कर है।

(श्री रामकिंकर, उ०प्र०)

ऐ मेरे खुदा

ऐ मेरे खुदा, मुझे सिर्फ इतना कमाल दे
मुझे अपनी राह पे डाल दे, तेरी रहमतों का नज़ूल हूँ
मुझे माल-ओ-ज़ार की हवस न हो, मुझे बस तू रिज़्क-ए-हलाल दे
मेरे ज़हन में तेरी फिक्र हो, मेरी सांस में तेरा ज़िक्र हो
तेरी ख़ौफ मेरी निजात हो, सभी ख़ौफ दिल से निकाल दे
मेरी बरग़ाह में ऐ खुदा, मेरी रोज़-ओ-शब यही है दुआ
तू रहीम है तू करीम है, तू सभी बलाओं को टाल दे

-अमीन

sufihaq.blogspot.com
Sufi Hindi Urdu poetry of Ameen

रामाश्रम सत्संग (रजि.) ग़ाज़ियाबाद

रजिस्टर्ड ऑफिस: एस ई 297, शास्त्री नगर, हापुड़ रोड, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

उमाकान्त प्रसाद
आचार्य एवं अध्यक्ष

207, संयम प्रतीक अपार्टमेंट
खाजपुरा, पटना–800014

घोषणा: संस्था की कार्यकारणी समिति 2024–2025

मैं, उमा कान्त प्रसाद पुत्र स्व. श्री चंद्रिका प्रसाद, आचार्य एवं अध्यक्ष रामाश्रम सत्संग (रजि.) गाजियाबाद (उ. प्र.) संस्था की वर्तमान कार्यकारणी समिति भंग करता हूँ। वर्ष 2024–2025 के लिए संस्था के विधान की धारा 10(ग) में प्रदत अधिकारों के तहत नवीन कार्यकारणी समिति का गठन करता हूँ तथा नवीन कार्यकारणी समिति में निम्न पदाधिकारिओं एवं सदस्यों की नियुक्ति की घोषणा करता हूँ तथा नयी सूची जारी करता हूँ, जो विधान की धारा के अनुसार एक वर्ष की अवधि हेतु वैद्य एवं प्रभावी होगी :–

क्र.	पद	नाम	पता	व्यवसाय
1.	अध्यक्ष	उमा कान्त प्रसाद पुत्र श्री चंद्रिका प्रसाद	207, संयम प्रतीक अपार्टमेंट, खाजपुरा, पटना – 800014	सेवानिवृत्त
2.	उपाध्यक्ष	कैप्टन के.सी. खन्ना पुत्र श्री एल आर खन्ना	आर –11/182, न्यू राजनगर, गाजियाबाद	सेवानिवृत्त
3.	मंत्री	श्री अनुराग चन्द्र प्रसाद पुत्र श्री हरीश चन्द्र प्रसाद	बी1–206, अरावली, सैक्टर 34, नोयडा	सर्विस
4.	कोषाध्यक्ष	श्री राकेश वर्मा पुत्र श्री विनायक प्रसाद वर्मा	ए 4– 1403 इरोस सम्पूर्णम, सेक्टर–2, ग्रेटर नोएडा वेस्ट गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश	सेवानिवृत्त
5.	संयुक्त–मंत्री	श्री राकेश कुमार पुत्र श्री शारदा नंद लाल	नन्द भवन, गाँधी पथ, गौड़िया मठ जक्कनपुर, पटना	सर्विस
6.	सदस्य	श्री. प्रियाशरण पुत्र श्री गणेश प्रसाद श्रीवास्तव	105 – हिमालय टॉवर, अहिंसा खण्ड–2, इन्द्रापुरम, गाजियाबाद	सेवानिवृत्त

क्र.	पद	नाम	पता	व्यवसाय
7.	सदस्य	श्री रमेश चंद्र प्रसाद सिन्हा पुत्र श्री देव नंदन प्रसाद	एम ए-39 आदित्यपुर हाउसिंग कॉलोनी, जमशेदपुर, बिहार	सेवानिवृत्त
8.	सदस्य	श्री आर. पी शिरोमणी पुत्र श्री मूलचन्द वैद्य	मूलचन्द मार्किट, शमशाबाद रोड, आगरा	सेवानिवृत्त
9.	सदस्य	प्रो. राजेश के. सक्सेना पुत्र श्री जंग बहादुर सक्सेना	1501,टी 2, हारमनी अपार्टमेंट, सेक्टर 50, गुरुग्राम, हरियाणा	सेवानिवृत्त
10.	सदस्य	श्री अजय बहादुर सिंह पुत्र गोपाल प्रसाद सिंह	प्लाट नम्बर-854, फ्लैट नम्बर-401/402, सुरेन्द्र अपार्टमेंट, मधुसूदन नगर, भुवनेश्वर, ओड़िशा	शिक्षण संस्थान
11.	सदस्य	श्री आशुतोष झा पुत्र श्री महाकान्त झा	402/सी, श्री गणेश अपार्टमेंट, अशोक विहार, रांची स्ट्रीट	शिक्षण संस्थान
12.	सदस्य	श्री ब्रजेश कुमार श्रीवास्तव पुत्र श्री उमा कान्त प्रसाद	ई-19, स्ट्रीट एफ1ए पांडव नगर (मयूर विहार फेज-1साइड), दिल्ली-110091	लीगल फर्म
13.	सदस्य	श्री राकेश कुमार पुत्र श्री रबिन्द्र ठाकुर	फ्लैट नम्बर-4ए, कैलाश अपार्टमेंट, साउथ ऑफिस पारा डोरंडा, रांची- 834002, झारखण्ड	सर्विस
14.	सदस्य	श्री संजीव कुमार सिन्हा पुत्र श्री हरे कृष्ण बरियार	हाउस नंबर-16 चेतना समिति ए जी कलोनी के समीप, पटना	सर्विस
15.	सदस्य	श्री रंजीव कुमार (अतुल) पुत्र श्री उदय कुमार सिन्हा	2/267, विक्रम खंड-२, गोमती नगर, लखनऊ-226010	सर्विस

Sd/-
उमाकान्त प्रसाद
अध्यक्ष एवं आचार्य
रामाश्रम सत्संग (रजिस्टर्ड) ग़ाजियाबाद

दिनांक 14-10-2024

भारतीय वांङगमय

भारत देश शाब्दिक तौर पर 'भा' एवं 'रत' के संयोग (भा + रत = भारत) से बना है अर्थात यह ज्ञान (भा) अर्जन में रत रहने वाले लोगों की भूमि है, जहाँ से नि:सृत ज्ञान गंगा ने अपनी नित नव्य एवं दिव्य आविष्कारों, संकल्पनाओं, लौकिक–पारलौकिक सिद्धांतों, दर्शनों के माध्यम से जगत की ज्ञान पिपासा को न केवल तृप्त किया है, अपितु वैज्ञानिक अनुसंधानों एवं उपलब्धियों के द्वारा जगत के जन जीवन को जगमग किया है। भारतीय भौगोलिक परिसीमा ''जम्बूद्वीपे, आर्यावर्ते, भरतखंडे, भारतवर्षे'' के विकास क्रम के अनुरूप ही भारतीय ज्ञान जान्ह्वी भी अक्षर, लिपि रूपि बूँद के स्वरूप से बढ़ते–बढ़ते वेद, पुराण, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, षड्दर्शन, धर्मशास्त्र, स्मृतियाँ, रामायण, महाभारत, भक्ति–सूफि साहित्य रूपि विशाल महासागर में रूपांतरित हो गया।

भारतीय ज्ञान वांङगमय की विशदता की प्रमाणिकता यही है कि विश्व के किसी भी कोने के किसी भी जिज्ञासु की किसी भी प्रकार की जिज्ञासा का शमन यहाँ संभव है। बहुत संभव है कि जिज्ञासु भारतीय ज्ञान गंगा में अवगाहन के क्रम में ऐसे–ऐसे अनमोल मोती और रत्न पा जाये जिससे कि उसके जीवन की दिशा–दशा और जीवन के प्रति दृष्टि हीं परिवर्त्तित और परिष्कृत हो जाये। इसके प्रभाव के प्रतीक स्वरूप भक्त प्रहलाद, गुरूभक्त आरूणि, भक्त शिरोमणि ध्रुव आदि हैं तो परिवर्त्तन और रूपांतरण के प्रतीक हैं; आदि कवि वाल्मिकी और राजकुमार सिद्धार्थ।

वेद, भारतीय ज्ञान परंपरा की आधारपीठिका हैं। सामान्य अवधारणा के विपरीत वेद केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं है अपितु इसके अध्ययन से स्पष्ट है कि वेद समग्रता में धर्म, अध्यात्म, समाज, राजनीति, प्रशासन, अर्थव्यवस्था, ज्ञान–विज्ञान तथा जलवायविक विषयों पर विशद और गहन संकल्पना मानव मात्र के कल्याण के लिए उपलब्ध कराती है।

वेद अपनी उपादेयता एवं अकाट्यता के कारण हीं शब्द ब्रह्म है, प्रस्तुत ज्ञान हेतु किसी साक्ष्य की आवश्यकता न होने के कारण अनन्य साध्य है, अप्रमेय है क्योंकि इसमें उपलब्ध संपूर्ण ज्ञान को आत्मसात् करना मानव के सामर्थ्य से बाहर

है अर्थात् यह मानव रचित नहीं है इसलिए अपौरूषेय है, ईश्वर कृत है, अतः अनंत है, अलौकिक है, अभूतपूर्व और विलक्षण है। ईश्वर द्वारा वेदों की रचना कर इसकी ज्ञान तरंगों को निर्वात् में तरंगायित होने हेतु मुक्त कर दिया गया जिसे ऋषि-मुनियों ने अपने ध्यान-ज्ञान की सामर्थ्य शक्ति से धारण कर उद्भासित किया तथा संबंधित वेद अंश को उद्भासित करने वाले ऋषि इस अंश के द्रष्टा ऋषि कहलाए। यही कारण है कि किसी भी ऋषि मुनि को स्रष्टा ऋषि के रूप में अभिहित नहीं किया गया है।

मान्यता है कि ईश्वर द्वारा तरंगायित एवं ऋषि मुनियों द्वारा उद्भासित वेद ज्ञान कालांतर में लुप्त हो गया, जिसे द्वापर युग में कृष्णद्वपायण ऋषि के द्वारा पुनः उद्भासित कर वर्णित विषय के अनुरूप चार खंड में पुनर्विन्यस्त किया गया। फलस्वरूप, ऋषि कृष्णद्वपायन, वेद व्यास के रूप में जग विख्यात हुए। वेद के प्रत्येक पुनर्विन्यस्त खंड के संरक्षण और प्रवर्द्धन हेतु संरक्षक निर्धारित किए गए, जिन्होंने श्रुति परंपरा से चारो वेद; ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद अगली पीढ़ी को हस्तांतरित किया। श्रुति परंपरा से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरण के कारण वेदों को 'श्रुति' भी कहा जाने लगा। महात्मा वेद व्यास द्वारा ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद हेतु क्रमशः पैल, जैमिनी, वैशमपायण, एवं सुमंत संरक्षक निर्धारित किए गए। कालांतर में, विभिन्न वेदों से जुड़े मनिषियों के द्वारा अनेकानेक ग्रंथों की रचना की गई जो ब्राह्मण ग्रंथ (ध्यातव्य हो कि 'ब्राह्मण' शब्द जाति-वर्ण सूचक नहीं है अपितु इसमें गद्य रूप में वेदों की सरल व्याख्या है), आरण्यक ग्रंथ तथा उपनिषद नाम से ख्यात हुए। वेद विशेष की परंपरा से जुड़े मनिषियों द्वारा रचित ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक ग्रंथ तथा उपनिषद इसी वेद विशेष से जुड़े ग्रंथ के रूप में स्वीकृत हुए। यद्यपि ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक ग्रंथ एवं उपनिषद मुख्य रूप से क्रमशः कर्मकांड, उपासना तथा ज्ञान पर केन्द्रित थे तथापि इनके अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि इनमें राजनैतिक व्यवस्था, सामाजिक संरचना, शैक्षणिक परंपरा, भौगोलिक विस्तार तथा ज्ञान-विज्ञान संबंधी गंभीर संकल्पना प्रतिपादित है।

वैदिककालीन राजनीतिक व्यवस्था गणतंत्रात्मक राजत्व पर अधारित था। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में निर्वाचित राजा का वर्णन मिलने से इसकी पुष्टि होती है। राजा

का निर्वाचन करने से लेकर राजकाज के निर्णयों में सहयोग के लिए सभा समिति तथा विदथ नामक संस्था प्रभावी भूमिका का निर्वाह करती थी। सभा तथा समिति में महिलाओं की भी भागीदारी थी तथा विदथ विशिष्ट वरिष्ठ जनों की सभा थी जिसकी तुलना वर्तमान सांविधनिक व्यवस्था अंतर्गत संचालित राज्य सभा से की जा सकती है। समाज वर्ण आधारित था, जिसका वर्णन ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में मिलता है। सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियाँ समान सामाजिक, राजनीतिक एवं शैक्षणिक अधिकारों का उपभोग करती थी। तत्कालीन समाज में स्त्री शिक्षा उत्कृष्ट अवस्था में थी जिसकी पुष्टि अप्पाला, विशावरा, घोषा, लोपामुद्र, पौलोमी, ऐत्रेयी आदि का वर्णन वैदिक ऋचाओं से सम्बद्ध होने से होती है। उच्च शिक्षा प्राप्त स्त्रियाँ ब्रह्मवादिनी एवं ऋषिका के रूप में उल्लिखित हैं तथा शिक्षा प्रदान करने वाली स्त्रियों का वर्णन उपाध्याया के रूप में है। तत्कालीन स्त्रियों की स्थिति वर्तमान सभ्यता के किसी भी राष्ट्र में स्त्रियों की स्थिति से तुलना करने पर भारतीय समाज व्यवस्था को गौरवान्वित करने वाली है।

इस काल खंड में लोक एवं परलोक को ध्यान में रखकर विकास की रूपरेखा तैयार की गई। सुसंस्कृत ज्ञान आधारित संस्कारवान समाज के निर्माण के सिद्धांत पर पाठ्यक्रम निर्धारित किए गए। अत: मूल्य आधारित जीवन, भोग एवं त्याग का समन्वय तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष आधारित पुरूषार्थी जीवन की संकल्पना प्रतिपादित की गई। यही कारण है कि वैदिक ग्रंथों में सर्वशक्तिमान की गूढ़ संकल्पना के साथ ही विभिन्न सूक्त विभिन्न विषयों यथा; पुरुष सूक्त, नासदीय सूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त में सृष्टि विज्ञान, सूर्य सूक्त में सूर्य विज्ञान, पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी विज्ञान, पदी सूक्त में नदी संबंधी ज्ञान, कृषि एवं वर्षा सूक्त में कृषि पद्धति एवं वर्षा के संबंध, आत्मा सूक्त में आत्म विद्या, अध्यात्म सूक्त में अध्यात्म विद्या, प्राण सूक्त में जैव विज्ञान तथा व्रात्य सूक्त में समाज विज्ञान पर प्रकाश डाला गया है।

कालांतर में, वेदों को अधिक सरलता और स्पष्टता से आत्मसात करने के उद्देश्य से शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छंद, ज्योतिष नामक ग्रंथ की रचना की गई जिन्हें 'वेदांग' कहा गया। इन ग्रंथों के द्वारा ज्यामिति, शब्द व्युत्पत्ति, वर्ण उच्चारण, स्वर विज्ञान, सम्यक अर्थ निर्धारण तथा ज्योर्तिविज्ञान का विकास हुआ। अंक गणित, बीज गणित,

त्रिकोण मिति, शून्य, दशमलव एवं अंक पद्धति का ज्ञान भी विभिन्न वैदिक ग्रंथों की ऋचाओं में सहज ही उपलब्ध है। 'एकं सद् विप्राः बहुधा वदंति' सर्वख्यात श्लोक 'एक' एवं 'बहुत' का उल्लेख कर अंक ज्ञान का सहज प्रमाण देती है। विभिन्न प्रकार की यज्ञवेदी एवं यंत्रों को निर्माण त्रिकोणमिति ज्यामिति का सुलभ प्रमाण है। श्री यंत्र की जटिल ज्यामितीय रचना से ज्यामिति के विकास का अनुमान लगाया जा सकता है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

वृहदारण्यक उपनिषद का उपरोक्त श्लोक पूर्ण परम ब्रह्म परमात्मा से उत्पन्न जगत के पूर्ण होने तथा पूर्ण से पूर्ण को निकाल देने पर भी पूर्ण के बच जाने की संकल्पना उस अनंत "Infinity" की संकल्पना को द्योतित करता है, जिससे अनंत निकाल देने पर भी अनंत ही बचता है ($\infty - \infty = \infty$) का प्रतिपादन आधुनिक विज्ञान द्वारा किया गया है।

इस प्रकार की वृहद् और गूढ़ संकल्पनाओं को ऋचाओं में सूत्रबद्ध करने के उपरांत विकास क्रम को लिपिबद्ध करने की जिज्ञासा ने 'पुराण' नामक ग्रंथ का प्रणयन किया। पुराण की रचना तिथि आधारित न कर के कालखंड आधारित की गई। इस प्रकार पुराण आधुनिक इतिहास लेखन की पूर्व परंपरा है। पुराणों की संख्या 18 है तथा 19 उप पुराण हैं। भारतीय वांङगमय में वेद, पुराण, उपनिषदों के अतिरिक्त अनेक ध र्मशास्त्र तथा स्मृति ग्रंथ समयानुकूल जुड़ते गए। महा काव्यात्मक चरमोत्कर्ष रामायण तथा महाभारत में परिलक्षित होता है। रामायण की रचना आदि कवि वाल्मिकी द्वारा भाषाओं की जननी देवभाषा संस्कृत में की गई।

महर्षि वेद व्यास रचित महाभारत के विभिन्न पर्व में जीवन की समस्त आकांक्षाओं के अनुरूप सूत्र दिए गए हैं। यह भ्रम है कि महाभारत केवल युद्ध का वर्णन करने वाली पुस्तक है। इस भ्रम का निराकरण हेतु सबसे पुष्ट साक्ष्य यह है कि श्रीमद् भागवद् गीता, महाभारत नामक पुस्तक का अंश ही नहीं उसका मोर मुकुट है जिसने द्वापर काल से अब तक समस्त मुमुक्षुओं, ज्ञान पिपासुओं की न केवल ज्ञान पिपासा को तृप्त किया है, अपितु उस परम ब्रह्म परमात्मा से एकाकार होने का भी मार्ग प्रशस्त

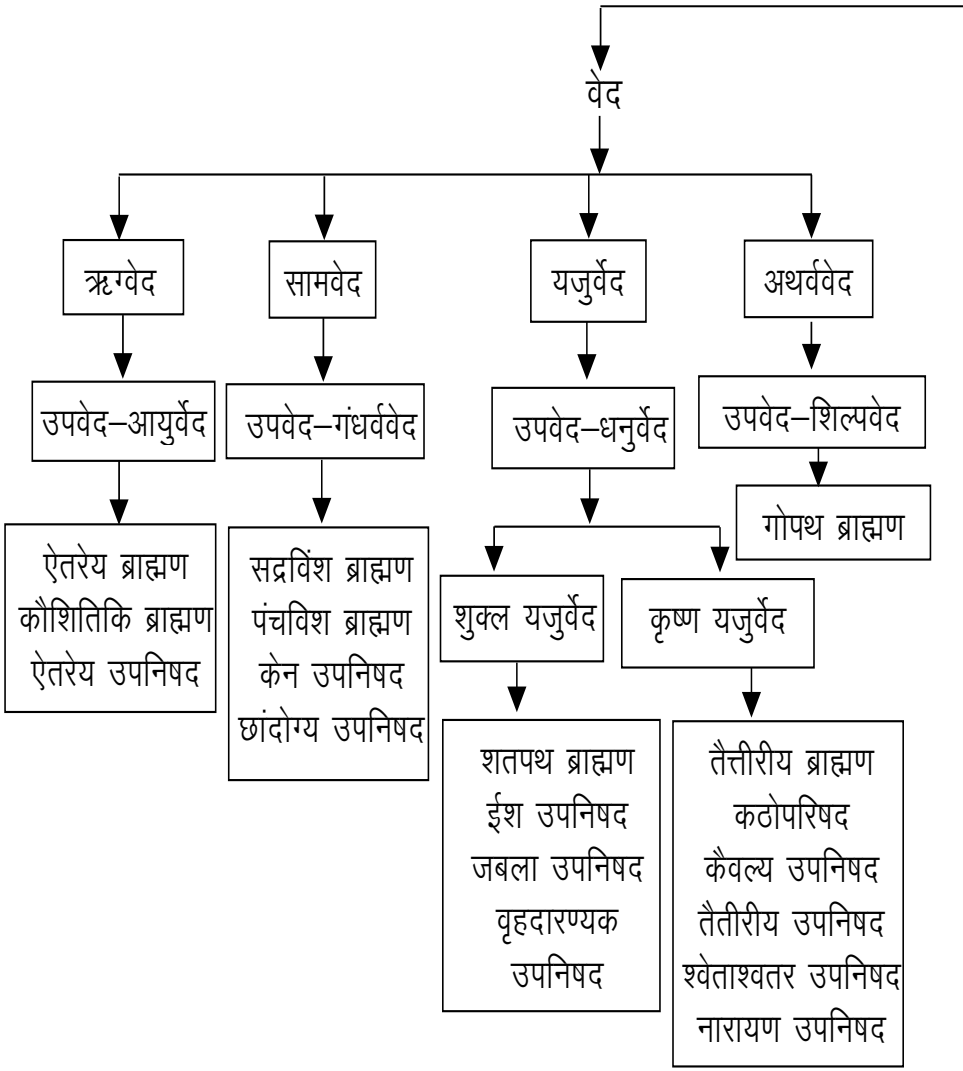

नोट :– केवल उपलब्ध वैदिक ग्रंथों का उल्लेख है।

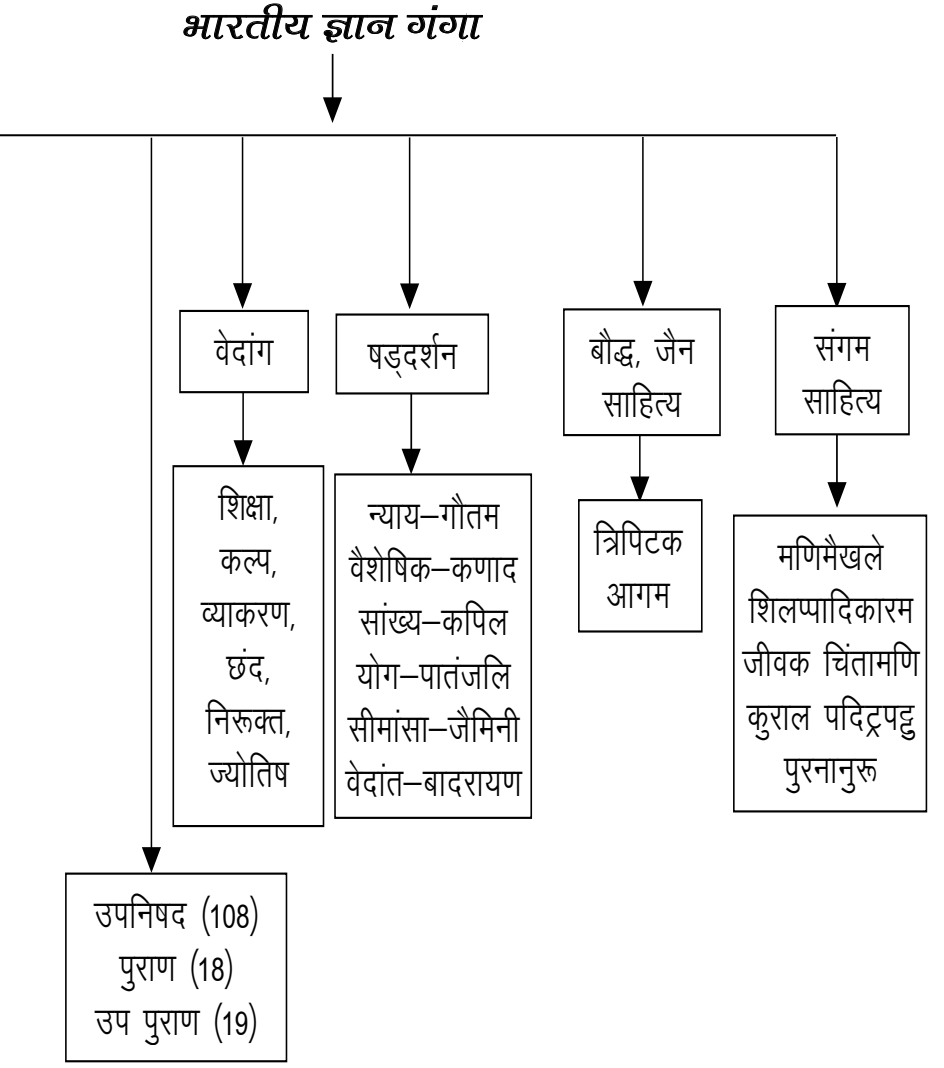
भारतीय ज्ञान गंगा
वेदांग
षड्दर्शन
बौद्ध, जैन साहित्य
संगम साहित्य
शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छंद, निरूक्त, ज्योतिष
न्याय–गौतम
वैशेषिक–कणाद
सांख्य–कपिल
योग–पातंजलि
सीमांसा–जैमिनी
वेदांत–बादरायण
त्रिपिटक आगम
मणिमैखले
शिलप्पादिकारम
जीवक चिंतामणि
कुराल पदिट्रपट्टु
पुरनानुरू
उपनिषद (108)
पुराण (18)
उप पुराण (19)

किया है। यही कारण है कि महात्मा वेद व्यास ने महाभारत को पंचम वेद की संज्ञा दी है।

ज्ञानार्जन में निमग्न रहने वाले लोगों की भारत भूमि स्वाभाविक ही विभिन्न प्रकार के दर्शनों को प्रस्फुटित, पल्लवित, पुष्पित और फलित होने हेतु उर्वरा भूमि उपलब्ध करा दिया। विचार स्वातंत्र्य को ''एकं सत् विप्राः बहुधा वदंति'' के सूत्र वाक्य में प्रबलता से रेखांकित किया जा सकता है। इस अनुकूलता के कारण ही अनेक संप्रदाय और दर्शन का आविर्भाव इस पुण्य भूमि पर संभव हो सका। जहाँ एक ओर बौद्ध एवं जैन धर्म जैसे मानवतावादी अहिंसा प्रधान दर्शन से विश्व दो–चार हुआ वहीं दूसरी ओर आजीविका और चार्वाक जैसे नास्तिक एवं भोगवादी दर्शन का भी सह अस्तित्व बना रहा। बगैर परस्पर संघर्ष के सभी फलते–फूलते रहे और सामान्य मानवी अपनी वृत्ति के अनुसार अनुकूलता पा कर अनुसरण करती रही।

जहाँ एक ओर गंगा की उपत्यका में वैदिक ग्रंथों का सृजन हो रहा था वहीं दक्षिण भारत में संगम सभाओं के द्वारा अनेकानेक साहित्य सर्जना हो रही थी। मान्यता है कि कुल 03 संगम सभा आयोजित किऐ गए जिनमें प्रथम दो सभा की अध्यक्षता भगवान अगस्त्य के द्वारा तथा तृतीय सभा की अध्यक्षता नक्कीरर द्वारा की गई। इन संगम सभाओं में शामिल हजारों विद्वानों के द्वारा अनेकानेक साहित्य की रचना की गई जिन्हें संगम साहित्य के नाम से जाना जाता है। श्रीमान् तोलकाप्पियम के द्वारा तोलकाप्पियम नामक तमिल व्याकरण ग्रंथ की रचना की गई। पदिट्रपट्टु, पुरनानुरू, मणिमैखले, शिलप्पादिकरम, जीवक चिंतामणि आदि संगम काल की महान रचनाएँ हैं जिनमें तत्कालीन तमिल समाज में प्रचलित धर्म, सामाजिक व्यवस्था आदि का विस्तार से वर्णन है। ब्रह्मा के अवतार के रूप में विख्यात् संत तिरुवल्लुवर की रचना 'कुराल' को विदेशी विद्वानों के द्वारा दक्षिण भारत का बाइबिल के रूप में उल्लिखित किया गया है।

समय के साथ–साथ वैदिक कालीन गणतंत्रात्मक राजतंत्र, संपूर्ण राजतांत्रिक व्यवस्था के रूप में परिणत हो गई जिसका प्रथम पूर्ण विकसित स्वरूप मौर्य काल में परिलक्षित हुआ। इस काल की प्रमुख रचना कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र है। जिसका प्रमुख प्रतिपाद्य शासन–प्रशासन व्यवस्था है। गुप्त काल तक आते–आते भारतीय ज्ञान

परंपरा भारतीय एवं विदेशी-विद्वान यात्रियों यथा- मेगास्थनीज, फाह्यान, ह्वेनत्सांग, इत्सिंग, प्लिनी, एरियन आदि की रचनाओं से समृद्ध होने लगा। विदेशी विद्वानों ने भारत की चतुर्दिक उपलब्धियों का वर्णन चमत्कृत भाव से किया है। भारत की यह चतुर्दिक उपलब्धि सैंधव घाटी सभ्यता की नगर संरचना, मुद्रा व्यवस्था, शल्य चिकित्सा के प्रमाण, मौर्य एवं गुप्त काल में साहित्यिक रचनाओं यथा-कालिदास विरचित ऋसंहार, मेघदूत, रघुवंशम, अभिज्ञान शकुंतलम, विशाखदत्त रचित मुद्राराक्षस एवं देवीचंद्रगुप्तम बुद्धघोष एवं सिद्धसेन द्वारा त्रिपिटक एवं न्याय दर्शन पर लिखे गए भाष्य वैदिक कालीन रचना परंपरा को आगे बढ़ाने वाली प्रतीत होती है। वैज्ञानिक पराकाष्ठा इस बात से स्वत: प्रमाणित है कि लगभग 1500 वर्ष पूर्व आर्यभट्ट के द्वारा ''पृथ्वी गोल है, यह अपने धूरी पर घूमती है तथा इसकी छाया चंद्रमा पर पड़ने से ग्रहण लगता है'' जैसे सिद्धांत का प्रतिपादन किया गया। धातु विज्ञान की श्रेष्ठता गुप्तकालीन महरौली स्तंभ है जो सैकड़ों वर्षों से खुले आसमान के नीचे जंगरहित खड़ा है। भारतीय प्रगति का सर्वाधिक श्लाघनीय पहलु यह है कि वैभव के चरमोत्कर्ष पर पहुँच कर भी मानवता को दास बनाने के प्रयाण पथ पर कभी अग्रसर नहीं हुआ। बल्कि शेष सभ्यताओं को भी कुटुम्ब मानकर ''वसुधैव कुटुम्बकम'' की उद्घोषणा करते हुए संस्कारित, शिक्षित और सुखी बनाने के निमित्त धर्म दूत और ज्ञान दूत भेजे क्योंकि भारतीय मनीषा ने अथर्ववेद के सूत्र वाक्य-

''शतहस्त समाहार सहस्त्र हस्त सं किर''

अर्थात् ''सौ हाथों से धन अर्जित करो और हजार हाथों से उसे बाँटो'' तथा ''परोपकाराय पुण्याय, पापाय परपीड़नम्'' अर्थात् ''परोपकार ही पुण्य और परपीड़ा ही पाप है'' को अपना ध्येय वाक्य, मंत्र वाक्य बनाया।

समर्पणम् अस्तु!

(राकेश कुमार, रांची)

समर्थ सद्गुरु परमसंत महात्मा श्री रामचन्द्र जी महाराज के उर्दू में लिखित आध्यात्मिक लेख का हिंदी अनुवाद

- व्यवहार ठीक हुए बिना परमार्थ नहीं बनता। इसलिए आगे व्यवहार के सम्बन्ध में बतलाया जाता है। सुनो!
- सांसारिक और मानसिक रीति रिवाज के पालन करने को व्यवहार कहते हैं। इसमें आचार विचार, लौकिक और कौटुंबिक सभी रीतियाँ सम्मिलित हैं। हमारी रहनी–सहनी कैसी हो, हम दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करें, यह सब व्यवहार है। जो तुम्हारे इस मार्ग के लिए लाभदायक है। जिस पन्थ के तुम अनुयाई बने हो तथा जिस पर तुम जाना चाहते हो, उसके सम्पूर्ण मार्गदर्शन, रीति–रिवाज, और विधि–विधान को जाने बिना उससे लाभ नहीं उठा सकते।
- तुम्हें चाहिए कि समय–समय पर जो शिक्षाएं और निर्देश तुम सुनते हो, उन्हें लिख लो। कभी–कभी एकान्त में बैठकर विचार करो और उन्हीं के अनुसार जीवन को बिताओ। नित्य नियम जैसे संध्या–पूजा, भजन, उपासना को कभी भूलकर भी मत छोड़ो। यदि इस मार्ग के और साथी (सत्संगी) मौजूद हों एक साथ बैठकर इस कार्य को प्रेम और सच्ची निष्ठा के साथ करो इससे तुम और भी जल्दी सफल हो जाओगे। अपने सत्संग का नियम बना लो और दृढ़ता से पालन करो। जो मनुष्य अकारण ही आलस्य अथवा भूल से नियमों का पालन न करें, उसे दण्ड दो–पश्चाताप करना, व्रत रखना, दान देना, इत्यादि। इस प्रकार के दण्ड देने का विधान सत्संगों में हुआ करता है।
- नेक कमाई करो। खेती–बाड़ी, नौकरी, व्यापार इत्यादि से जो आमदनी हो उसका एक भाग निकालो फिर उससे ऐसे काम करो जो दूसरों के लाभ के हों। तुम्हारे अकेले की उन्नति से कुछ नहीं होगा। स्त्री, बच्चों और अपने कुटुम्बियों को भी इधर लगाओ, जिससे तुम्हारे घर का वायुमंडल शुद्ध और शान्त हो। बिना सब लोगों में प्रेम हुए अशांति दूर नहीं हो सकती।
- ऐसा करने के लिए दिन रात में कोई एक समय ऐसा नियत करो कि उस समय सब मिलकर धर्म सम्बन्धी चर्चा, धार्मिक पुस्तकें पढ़ें और उनको दूसरों को समझाएं अथवा जो बातें कहीं बाहर से सुनकर आओ और वे सब के लिए लाभदायक हों तो उन्हें घर वालों को अवश्य बताओ।

ईश्वर प्राप्ति का यकीनी जरिया

1. जिक्र खफ़ी का जाप (दिल का जाप) किया करें।
2. नाजिन्स, गैर-आदमी और गैर-सोहबत के नक्शों से दिल को साफ रखें।
3. परमात्मा के सिवाय किसी की तरफ तवज्ज़ो न करें।
4. यकसुई और एकाग्रता के साथ दिल हाजिर रखने का इरादा करें।
5. सत और मालिक की तरफ उनसियत और लगाव हासिल करें।
6. अपने आप को मिटाकर उसी में महव और लय हो जाएं।
7. इसी काम में अपने को मिला दें। सबसे ज्यादा नजदीक रास्ता और असल पद पर पहुँचने का यकीनी जरिया है।

-(महात्मा रामचन्द्र जी महाराज)

Easiest & Most Certain Short-cut to Attain Eternal Bliss

1. Engage yourself in the practice of listening to every heartbeat, super imposing there with the nomenclature of the Lord (AJAPA JAP).
2. Keep your heart pure, away from the corrupting influence of undesirable things and undesirable company.
3. Always keep attuned to the Lord. Your attention should never for a moment be deviating there from.
4. Concentrate your attention on the heart and keep your heart centred in the Lord.
5. Endeavour to attain kinship and attachment to the Eternal truth, the Lord of the Universe.
6. Gradually erase the identity of self, try to merge in and attain oneness with God.
7. Sacrifice life in this grand endeavour.

(Mahatma Ramchandra Ji Maharaj)

Note: The English translation is done by Dr H.N. Saksena

राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार–शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम संदेश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम–सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट–छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम संदेश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। चन्दा 20 रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, एस ई 297–शास्त्री नगर, ग़ाज़ियाबाद–201002 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम संदेश डाक द्वारा नहीं भेजा जायेगा। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जायेगा। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजिस्टर्ड ऑफिस

एस ई 297–शास्त्री नगर,
ग़ाज़ियाबाद–201002

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : श्री उमा कान्त प्रसाद

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी–66, सैक्टर–6, नोएडा–201301